मिलने का पता:
१. विजयेश्वर ज्योतिष कार्यालय पञ्चतीर्थी (
२. नन्दलाल एण्ड सनज़ पुस्तक विक्रेता, जम्मू

॥ ओ३म् ॥

वान्
ंकर और दयानन्द

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी की

आध्यात्मिक और उपदेशप्रद कथा



महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

ध्यानावस्थित

आनन्द कथा माला—संख्या ३

भगवान्—

शंकर और दयानन्द

महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती जी की आध्यात्मिक
और धार्मिक रोचक कथा

अनुवादक—

जगदीशचन्द्र विद्यार्थी आर्योपदेशक

प्रकाशक—

गोविन्दराम हासानन्द

नई सड़क, देहली।

प्रथम वार] चैत्र शक: सं० १८७९ विक्रमी २०१४ [मू० ४१ नये पैसे

स्यागी फाइन आर्ट प्रेस, कटरा खुशहाल राय, देहली

प्रस्तावना

पूज्य महात्मा श्री आनन्द स्वामी जी महाराज (पूर्व म० खुशालचन्द जी आनन्द) संन्यासाश्रम में प्रवेश के पश्चात ऋषिकेश गंगोत्तरी आदि शान्त कुटियों में एकान्त वास करके स्वाध्याय तथा योगाभ्यास और तपस्या से अपने विचारों को परिपक्व करने के बाद प्रत्येक वर्ष कुछ मास सांसारिक मुमुक्षुओं को अपने अमृतमय उपदेश से तृप्त करते रहते हैं। महात्मा जी के उपदेशों में अमृतरस की वर्षा के साथ २ आनन्द, और ज्ञान दोनों की उपलब्धि होती है। यही कारण है कि उनकी प्रथम कथा 'आनन्द गायत्री कथा' के ३ संस्करण अल्प समय में समाप्त हो गये, चौथा संस्करण छापना पड़ा है। तथा–

'एक ही रास्ता' नामक दूसरी कथा में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन रूप उपदेश है वह भी हाथों हाथ बिक रही है। इसी से प्रोत्साहित होकर यह तीसरी कथा—

'भगवान शंकर और दयानन्द' जिसमें वेद, वेदान्त और ओंकार की व्याख्या बहुत कुछ मननयोग्य है जो कि प्रत्येक धर्मानुयायी के लिए पठनीय और उपदेशप्रद है, आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि पहले की दोनों कथाओं के तुल्य इसका भी उचित प्रचार होगा।

उर्दू मिलाप के अधिष्ठाता श्री रणवीर जी का आभार मानते हैं जिनके उर्दू लेखों से यह अनुवाद किया गया है साथ में श्री विद्यार्थी जगदीश जी के प्रति भी हम कृतघ्नता प्रकाशित करते हैं जिन्होंने परिश्रम करके अति शीघ्र यह अनुवाद कर दिया।

विशेष कृतज्ञता तो महात्मा आनन्द स्वामी जी महाराज के प्रति प्रगट करता हूँ कि वे ऐसे उत्तम उपदेश देकर सांसारिक मुमुक्षुओं को उपकृत करते रहते हैं।

—गोविन्दराम हासानन्द

पहला दिन

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे ॥

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

परमात्मा की अपार कृपा है कि एक बार फिर आपसे कुछ बातें करने का अवसर प्राप्त हुआ। पिछले कई वर्षों से संसार में उथल पुथल मच रही है। कुछ व्यक्ति इस बात से दुःखित है कि सन् १९५७ में प्रलय आयेगी, परन्तु सन् १९५७ से भयभींत होने वाले क्या यह नहीं देख सकते कि प्रलय निरंतर चली आ रही है। छः सहस्र वर्ष से संसार की दशा बिगड़नी आरम्भ हुई, इससे पूर्व कुछ शान्ति थी। परन्तु महाभारत से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व शान्ति का अन्त होने लगा। इस अशान्ति का परिणाम था महाभारत, परन्तु महाभारत से भी शान्ति तो न हुई, युद्ध से शान्ति कभी होती भी नहीं। दशा बिगडी और बिगड़ती चली जा रही है।

विदुर एक दिन महराज धृतराष्ट्र के पास गये। धृतराष्ट्र बोले, "यह क्या हो गया है दुनियां को !" विदुर ने कहा, "राजन् ! मोह के वशीभूत होकर मनुष्य लोभ, क्रोध और भय से पागल हुआ जाता है, चिन्ता की आग में ज़ला जाता है। जब तक वह लोभ क्रोध और भय से मुक्ति नहीं पायेगा, चिन्ता की अग्नि समाप्त नहीं होगी।"

एक कहानी सुनाई विदुर ने। एक था घना जंगल। उसमें कितने ही बिषैले और भयंकर जीव जन्तु चिल्लाते फिरते थे, सिंह और हाथी, सप और अजगर, चीते और रीछ। महान् अन्धकार था उसके अन्दर।

भागता हुआ एक व्यक्ति उसके निकट आया। एक बहुत बड़े शरीर वाली भयानक स्त्री को उसने वहां देखा। वहीं पांच विषैले सर्प देखे। वह भय के कारण भागा और कांपता हापता जंगल में दौडता चला गया। अन्धेरे में एक तालाब में जा गिरा। परन्तु इससे पूर्व कि तालाब की इस तह में पहुंचता जहाँ पानी नहीं था, किनारे पर लगे एक वृक्ष की शाखा उसके हाथ में आ गई। उससे लटक गया वह। जब कुछ होश आया तो उससे देखा कि नीचे गहरे तालाब की तह में एक भयानक सांप फन फैलाये बैठा है। उस की आंखे अंगारों की भाँति चमक रही हैं। ऊपर देखा कि एक छः मुख वाला हाथी उस वृक्ष को गिराने का प्रयत्न कर रहा है, जिसकी शाखा से वह चिमटा हुआ था। और यह भी देखा कि श्वेत और काले रंग के चूहे वृक्ष की शाखा को काट रहे हैं। ऊपर मृत्यु, नीचे मृत्यु। भय से उसका रोम रोम काँप उठा, परन्तु तभी वृक्ष की एक अन्य शाखा पर लगे शहद के छत्ते से बून्द बून्द करके शहद चूने लगा और उसके होटों पर गिरने लगा। उसने शहद को चक्खा। उसके स्वाद में खो गया। भूल गया नीचे के सर्प को, छः मुख वाले उस हाथी को जो ऊपर चिघाड़ता था, उन श्वेत और काले चूहों को जो शाखा को काट रहे थे, उस जंगल में चिल्लाते हुए सिहों को फुंकारते हुए अजगरों को, शौर मचाते हुए पशुओं को। उस व्यक्ति की भांति है यह मनुष्य। शाखा से लटका हुआ, शहद के स्वाद में सब कुछ भूला हुआ है।"

धृतराष्ट्र ने कहा, "वह जंगल क्या ? वह स्त्री क्या है, जिससे डर कर वह भागा।"

विदुर ने कहा, "संसार ही वह भयानक जंगल है। इसमें रोग शोक अग्नि भूकम्प, बाढ़ और लड़ाई झगड़े के पशु घूमते फिरते हैं। इसमें काम क्रोध लोभ, मोह और अहंकार के सर्प रेंगते हैं। इसमें वह भयानक स्त्री है जिसे बुढ़ापा कहते हैं। मनुष्य जीवन की जिस शाखा से चिमटा है उसे दिन और रात्रि के श्वेत और काले चूहे काट रहे हैं। स्वयं वृक्ष

को भी छः ऋतुओं वाला वर्ष हाथी बनकर धक्के मार रहा है। नीचे भयानक सर्प के रूप में मृत्यु प्रताक्षा कर रही हैं। इन सबको भूल कर यह अभागा मनुष्य आशा और निराशा के शहद की मिठास में खो गया है। नीचे की मृत्यु ऊपर का महानाश उसे दृष्टि गोचर नहीं होते।"

यह है आज से पांच सहस्र वर्ष पूर्व का दृश्य, जिसे देखकर प्रश्न जाग उठा, मनुष्य क्या करे ?

आज से दो हजार पाँचसौवर्ष पूर्वएक अर्थी का कुछ लोग उठाये लिए जाते थे। एक नवयुवक ने इसको देखा। आश्चर्य से पूछा, "क्या है यह ? कैसी वस्तु है जो आठ पांव से चलती है ?" उसके साथियों ने कहा, "अर्थी है यह। एक व्यक्ति मर गया, उसको जलाने के लिये ये लोग लिए जाते हैं। नवयुवक का नाम था राजकुमार सिद्धार्थ। बाद म संसार ने इन्हें शाक्य मुनि गौतम और बुद्ध भी कहा। आश्चर्य से वह बोला, "क्या प्रत्येक व्यक्ति को मरना पड़ना है ?" सारथी बोला, "हां राजकुमार ! प्रत्येक व्यक्ति का अंत में मरना है, मरने के पश्चात् मनुष्य को जलाया भी जाता भी है। राजकुमार ने भयभीत होकर कहा क्या मुझे भी मरना होगा? क्या मुझे भी जलाया जायेगा सारथी बोला 'अन्त तो ऐसा ही होगा, अन्त तो सबको मरना है।" आगे जाकर राजकुमार ने एक पंगु को देखा, एक दीन भिखारी को एक बूढ़ी स्त्री को जो लाठी टेककर चलती थी। एक निर्धन व्यक्ति को जो सर्दी से ठिठरा जाता था। उसका हृदय चिल्ला उठा, "यह सब कुछ यदि है तो मनुष्य क्या करे ?" इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिये वह एक वृक्ष के नीचे जा बैठा, तब तक नहीं उठा जब तक उसे अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिल गया।

और आज से दो सहस्र दो सहस्र दो सौ वर्ष पूर्व एक और बालक ने भी वे दृश्य देखे। उसकी आयु केवल आठ वर्ष थी। इसका हृदय भी चिल्ला उठा, "मनुष्य क्या करे ? करेल प्रान्त में अलवाई रेलवे स्टेशन

से परे कालपी नाम का एक ग्राम है. उस ग्राम मे अलवाई नदी के किनारे उसका घर था। मालाबार में जब दंगा हुआ और पूज्य महात्मा हंसराज जी की आज्ञा से मैं वहां पीढ़ित लोगों की सहायता के लिए गया तो उस गांव को देखा। उस अलवाई नदी को भी देखा जिस के किनारे आठ वर्ष के उस बालक ने एक चिता को जलते देखा था। एक बूढ़े को लड़खड़ाते हुए देंखा था एक रोगी की कराहते हुए देखा था। सबको देखकर उसका हृदय चिल्ला उठा, "यह क्या है ? क्यों है ? मनुष्य क्या करे ?" उस बालक का नाम था शंकर। बाद में संसार ने उसे जगद्गुरू शँकराचार्य कहा।

और आज से १३३ वर्ष पूर्व पश्चिम भारत की मछवा नदी के किनारे, टंकारा नाम के ग्राम में एक और बालक उत्पन्न हुआ। उस का नाम भी शंकर था। शिवरात्रि के दिन प्रात: से साँय काल तक व्रत रख कर वह बैठा रहा। सोचता रहा, आज रात को भगवान् शिव के दर्शन होंगे। रात्रि आई सब लोग सो गये। रात्रि के तीसरे पहर उस ने देखा कि एक चूहा शिव के ऊपर चढ़ मिष्टान को आनन्द पूर्वक भोग रहा है, तो उसके मन के भीतर कोई चिल्ला उठा, "ये तो भगवान् शिव शंकर नहीं हैं, ये तो कैलाश पति नहीं हैं।' तब कुछ दिन के पश्चात् उस की बहन मर गई। लोग रोए। मूल शंकर चुप खड़ा रहा, पूछा, "इसको क्या हो गया है ? लोगों ने बताया, "मर गई है यह, मौत ले गई इसको।" मूल शंकर ने आश्चर्य से पूछा, "क्या सब को मरना पड़ता है ?" उत्तर मिला, "सब को।" तभी कुछ दिनों के पश्चात् उस के चचा की मृत्यु हो गई, मौत उस के एक और प्यारे को ले गई। मूल शंकर के आँसुओं का बान्ध टूट गया। लोग चुप कराते, वह चुप नहीं होता, बार बार सोचता, "मैं ऐसे संसार में नहीं रहूंगा जहाँ शिव शिव नहीं है, जहाँ जीवन का अन्त मृत्यु है।" वैराग्य का वेग जाग उठा हृदय के अन्दर। सम्बन्धियों ने सोचा, "इस का विवाह कर दें, बहू आयेगी तो वैराग्य को भूल जायेगा। विवाहकी तैयारियाँ

होने लगी। मूल शंकर के हृदय में भूकम्प आने लगा। तब एक रात उस ने एक स्वप्न देखा कि एक महान् ज्योति उस के पास आ कर कह रही है, "सच्चे शिव की तलाश करनी है और मृत्यु पर विजय प्राप्त करनी है, तो घर से निकल, उन लोगों के पास पहुंच जिन्होंने मृत्यु पर विजय पाई है।" उस से अगली प्रातः यह बालक घर में नहीं था। घोर तप, न थकने वाली खोज के मार्ग पर चल पड़ा था, जिस ने उसे महर्षि दयानन्द बना दिया।

दो सहस्त्र दो सौ वर्ष पूर्व के शंकर ने अपनी मां से कहा था, "मैं साधु बन जाऊंगा, सन्यास लूंगा।' ममता भरी मां ने चिल्ला कर कहा, यह कैसे हो सकता है, अभी तू बच्चा है। अभी तू बड़ा होगा। तेरा विवाह करूँगी, बाजे बजेंगे।" शंकरने कहा, "नहीं मां! यह सब कुछ मुझे करना नहीं। मुझे एक और कार्य करना है, आज्ञा दो।" माँ नहीं मानी तो शंकर बोले, "अच्छा मां! चल नदी पर नहाने चलें। मैं नहाऊंगा तू देखना।" नदी के किनारे पहुंच कर माँ ने कहा, "बहुत आगे नहीं जाना, पानी अधिक है।'' शँकर कपड़े उतार कर नहाते हुए आगे बढ़े, तभी शोर मचा दिया, माँ! मुझे मगर मच्छ ने पकड़ लिया है, वह मुझे खेंचे लिये जा रहा है। तेरा पुत्र अब समाप्त हुआ। वीरान किनारे पर मां चिल्ला उठी, "हाय हाय मैं क्या करूँ?" शंकर पानी में खड़े खड़े बोले, "मां! मगर मच्छ एक बात कहता है, बोलता है कि यदि तू सन्यासी हो जाये तो मैं तुझे छोड़ दूंगा।" मां ने घबरा कर कहा, "ऐसी बात न कह इसे कह तुझे छोड़ दे। शंकर बोले, "वह मुझे घसीटे लिये जाता है तू यदि आज्ञा दे तो मैं इसे सन्यासी होने का वचन दे दूँ।" माँ ने रोते हुए कहा, "मैं वचन देती हूं।" शंकर बोले, "वह अभी सन्यासी होने की बात कहता है।' मां ने कहा, "अभी हो जाना, इसे कह तुझे छोड़ तो दे।" और इस प्रकार आज्ञा लेकर शंकर सन्यासी हुए। आठ वर्ष की आयु में नरबदा के तट पर स्वामी गोविन्दानन्द से उन्हों ने दीक्षा ली। स्वामी दयानन्द भी घर से निकल के वहीं पहुंचे।

आने वाले दिनों में जो बात मैं आपके सम्मुख रखना चाहता हूँ उसका विषय है, "शंकराचार्य और ऋषि दयानन्द की आध्यत्मिक कथा।" वे दानों सन्यासी थे। दोनों सत्य की खोज में घर से निकले। दोनों ने छोटा आयु में घर के सुख को त्याग दिया। दोनों ने विवाह नहीं कराया दोनों के अपने अपने समय की आवश्यकता को पूरा किया शँकर जब उत्पन्न हुए तो चारों ओर घोर नास्तिकता और वाम मार्ग फैल रहा था। इन से लड़ने के लिये उन्हों ने देश भर का भ्रमण किया। स्थान स्थान पर जा कर शास्त्रार्थ कियें। उपनिषदों के भाष्य लिखे, कई अन्य ग्रंथ भी लिखे। महर्षि दयानन्द ने भी सन्यास लेकर तप किया। ओखा मठ, जोशी मठ, उत्तर काशी और गंगोत्री में पहुंच कर पहाड़ों की गुफाओं में, नदियों के किनारे, घनघोर जंगलों में इतना घोर तप किया उन्हों ने कि एक महान् ज्योति उनके हृदय में जाग उठी। तिब्बत की सीमा के उस पार गंगोत्री के रास्ते में भारत का अन्तिम ग्राम है धराली। वहां के नम्बरदार ठाकुर नारायण सिंह ने मुझे बताया कि उन के पिता ठाकुर शिव सिंह ने स्वामी दयानन्द को देखा था। धराली के निकट ही गंगा के किनारे एक गुफा में वे रहते थे। उस गुफा में मैं गया। महर्षि ने वहाँ कई कई मास की समाधी लगाई। कितना घोर तप था वह। शंकाराचर्य ने भी तप किया, दोनों ने विद्या प्राप्त की। दोनों ने नास्तिकता के विरूद्ध प्रचार किया दोनों ने हिमालय से कन्या कुमारी तक देश की बार बार यात्रा की। दोनों ने वेद के प्रचार और वाम मार्ग के संहार के लिये अपना जीवन अर्पण दिया।

यही नहीं, दोनों के जीवन में और भी कितनी ही एक जैसी बातें हैं जगद्गुरू शंकराचार्य केवल १० वर्ष कार्य कर सके। २२ वर्ष की आयु में कार्य आरम्भ किया, ३२ वर्ष की आयु में उन का निधन हो गया महर्षि दयानन्द को भी कार्य करने के लिये लगभग इतना ही समय मिला। जगद्गुरू शंकराचार्य की मृत्यु विष से हुई। दो जैनी साधु

उन के शिष्य बने। उन के मन में पाप था। अवसर पाकर विश्वास घात किया उन्हों ने। शंकराचार्य का विष दे दिया।

छः मास वे विष की अग्नि से लड़ते रहे अन्त में चल बसे। महर्षि दयानन्द को भी जोधपुर में विष दिया गया। एक बार नहीं वार बार उन्हें समाप्त करने का प्रयत्न किया गया प्रयत्न करने वाले वे लोग थे जिन की दुकान दारी को महर्षि दयानन्द समाप्त किये देते थे। अन्तिम वार का बिष वहुत भयानक था। महर्षि का सारा शरीर छलनी हो गया। पर्याप्त समय तक सामुख्य करने के पश्चात एक दिन वे चले गये। शंकर ने वेद का प्रचार किया, दयानन्द ने भी। शंकर ने भी शास्त्रार्थ किये, दयानन्द ने भी। शंकर ने भी थोड़े से समय में कितनी ही पुस्तकें लिख डाली दयानन्द ने भी। एक आश्चर्यजनक समानता उनके जीवन में मिलती है एसा प्रतीत होता है कि बाइस सौ वष पहले के शंकराचार्य अपने समय के दयानन्द थे। १३३ वर्ष पहले के दयानन्द अपने समय के शंकरचार्य। अपने अपने समय पर अपनी अपनी अवधि से उन्होंने उन समस्याओं को सुलझाया जो देश और मानवों के समक्ष थी। शंकर के समय में नास्तिकता और वाम मार्ग के साथ लड़ने की आवश्यकता थी, वे लड़े। दयानन्द के समय में नास्तिकता और वाममार्ग के साथ साथ विदेशी सभ्यता का भी आक्रमण हो रहा था वे तीनों के विरुद्ध लड़े।

और वास्तविकता यह है कि पांच सहस्त्र वर्ष पहले की बात हो या ढाई सहस्त्र वर्ष पूर्व की बाइस सौ वर्ष पहले की बात हो या १३३ वर्ष पूर्व की,यह लड़ाई कभी रुकती नहीं। उस समय दुनियां दुःखीथी,आज भी दुःखी है। आज किसी भी घर में या परिवार प्रान्त में या देश में जाकर किसी से पूछिये, क्या कोई सुखी है ? क्या कोई छाती पर हाथ रख कर यह कह सकता है, मुझे कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं, पांच सहस्त्र

वर्ष पूर्व महात्मा विदुर ने कहा या, " दुनियां भय लोभ और क्रोध से पागल हुई जाती है। " क्या आज भी वही बात दृष्टि गोचर नहीं होती ? अमेरीका रूस से डरता है, रूस अमेरीका से। अमेरीका लोभ करता है सयुक्त देश मेरे साथ मिल जाये, रूस लोभ करता है मेरे साथ सम्मलित हो जाये। लोभ पूरा नहीं होता। और आज तक कभी किसी का हुआ नहीं तब क्रोध जाग उठता है। सब लोग इस मार्ग पर दौड़े जाते हैं, यह समझ कर कि सुख मिलेगा, परन्तु सुख है कहां ? सुख तो आत्मा को समझने और जानने में है। शरीर का रोग कोई रोग नहीं। सब से बड़ा रोग है आत्मा को भूल जाना परन्तु दुनिया समझ बैठी है कि शरीर में सब कुछ है यह नहीं समझा कि शरीर तो माया है, पंच तत्व का पुतला। एक मशीन। चलती अवश्य है, परन्तु उसे चलाता कौन है ? इस के अन्दर आत्मा न हो तो हजार प्रयत्न कीजिये, यह चलती नहीं। संसार भी एक मशीन है। इसे चलाने वाला परमात्मा है। वह न हो तो मशीन कुछ भी नहीं।

आप किसी के पिता हैं, किसी के पुत्र हैं, किसी के भाई हैं, मजिस्ट्रेट हैं, जज हैं, मन्त्री ह, व्यापारी हैं परन्तु तब तक जब तक आत्मा शरीर के अन्दर है यह निकल जाये तो फिर कुछ भी नही। कैलाश की यात्रा के लिये जाते समय तिब्बत में मैं ने देखा कही कोई वृक्ष नहीं। अपने पथ प्रदर्शक कीच खम्बा में मैंने पूछा यहां मुर्दे का क्या करते हें ! वह बोला "बताऊंगा दूसरे दिन" एक ऊंचे टीले के ऊपर एक कमरे का एक मकान बना हुआ था। कीच खम्बा ने बताया यह है शमशान, इस मकान में पुजारी रहते हैं कोई मर जायं तो रिश्तेदार लाश को यहां ले आते है पुजारी तलवार से उसे टुकड़े टुकड़े कर देते है, तब शख बजाते है शंख की ध्वनि सुन कर हजारो मांस भक्षी पक्षी आते है। थोड़ी ही देर में सब टुकड़ों को खा जाते हैं। यह है शरीर का मूल्य। जिसके कारण शरीर का मान है उसे दुनियां भूल गई, केवल शरीर को पालना आरम्भ कर दिया उसने।

शरीर को खाना खिलाया उसने आत्मा को को नहीं। अरे याद रखो। जब तक आत्मा भूखी है तब तक हजार योजनायें बनाओ, शान्ति नहीं नहीं होंगी मैं यह नहीं कहता कि शरीर कि चिन्ता न करो। शरीर तो आत्मा की मोटर है इस में तेल अवश्य डालो ताकि यह चलती रहे, परन्तु जो मोटर को चलाता है उस की भी तो चिन्ता करो, उसे खिलाओगे नही उसे भूखा मारोगे तो इस मोटर का क्या लाभ होगा? तुम्हें पतलून की चिन्ता है फटे हुए अन्तः करण की चिंता नहीं? वाहर वाले को सजाये चले जा रहे हो अरे अन्दर वाले को भी तो सजाओ वास्तविकता वह है वाहर की प्रदर्शनी नहीं।

अन्दर वाले को जगद्गुरु शंकराचार्य ने देखा, स्वामी दयानन्द ने देखा। लोग समझते हैं उनके सिद्धान्त अलग हैं, ऐसी बात नहीं है। दोनों का एक सन्देश है और वह यह कि आत्मा को जगाये बिना कार्य नहीं चलेगा। श्री शंकर अपने सारे ज्ञान का निचोड़ उस ग्रन्थ में लिखा है, जिस ग्रन्थ का नाम उन्होंने "विवेक चूड़ामणि" रक्खा। महर्षि दयानन्द ने अपने ज्ञान का निचोड़ "ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका" और सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है। "विवेक चूड़ामणि" में श्री शङ्कर कहते हैं, एक दुःखी गृहस्थी ने रोते हुए कहा इस भयानक संसार से पार जाने का मार्ग क्या है? ज्ञानी ने उत्तर दिया, "रो नहीं, घबरा नहीं। मार्ग है। उस पर जाने के उपाय हैं चार, श्रद्धा भक्ति, ज्ञान और योग।" महर्षि ने भी "ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका" के उपासना काण्ड में इन्हीं चार बातों का वर्णन किया, श्रद्धा, भक्ति, ज्ञान और योग। श्री शङ्कर ने ब्रह्म सूत्र का भाष्य किया है, जिसका पहला सूत्र है:—

अथातो ब्रह्मजिज्ञासा।

अब ब्रह्म की खोज आरम्भ होगी। और इसके साथ ही लिखा ब्रह्म की खोज को आरम्भ करने से पूर्व चार वस्तुओं का होना आवश्यक है। पहली यह कि जो व्यक्ति खोज करना चाहता है उसे आत्मा और

अनात्मा का पता हो। दूसरी यह कि वह लोक और परलोक के लोभ से वैरागी हो गयाहो , तीसरी यह कि उसके पास छः प्रकार की सम्पत्ति हो और चौथी यह कि उसके अन्दर मुक्ति पाने की इच्छा हो। यह छः प्रकार की सम्पत्ति है-शम, दम उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान। महर्षि दयानन्द ने उन्हीं चार बातों की चर्चा "सत्यार्थ प्रकाश" में की है। सबसे पहली बात को कहते हैं विवेक। यह जानना कि जड़ क्या है और आत्मा क्या है ? यह शरीर जड़ है, जिसके कारण इसके अन्दर जीवन है वह आत्मा है। शरीर का नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता। पाँव की हड्डी टूटती है तो आत्मा की हडड्ी नहीं टूटती। शरीर का गला कटता है तो आत्मा का गला नहीं कटता। स्वामी राम तीर्थ जी ने ठीक कहा है:—

खंजर की क्या मजाल १ कि इक जख्म २ कर सके।
तेरा ही है ख्याल ३ कि घाइल हुआ है तू॥

इस बात को जानने वाले हकीकत ने कहा:—

काट सकते हो तो बाहर का हकीकत काटो।
काटती असल हकीकत को यह तलवार नहीं॥

इस बात को जानने वाले भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कहा, "यह आत्मा कटता नहीं, जलता नहीं, सूखता नहीं,डूबता नहीं।" यह है विवेक, यथार्थ ज्ञान। इस बात को समझना कि आत्मा क्या है, जड़ क्या है ?

दूसरी बात को कहते हैं वैराग्य। प्रत्येक प्रकार के फल की इच्छा को त्याग देना, निष्काम भाव से कर्म करते जाना। आजकल तो निष्काम कर्म का अर्थ ही लोग समझ नहीं पाते। लोग सेवा भी करते हैं तो

---

(१) शक्ति (२) घाव (३) विचार अनुवादक

वोट प्राप्त करने के लिए। जहां वोट मिलने की आशा न हों, वहाँ उन का सेवा करने को ही जी नहीं चाहता। परन्तु आत्मा की खोज करनी हो तो केवल इस लोक के नहीं परलोक के लोभ को भी त्यागना पड़ता है।

तीसरी बात को कहते हैं षट सम्पत्ति। छ प्रकार की सम्पत्ति। इन में पहली सम्पत्ति है शम—प्रत्येक दशा में शान्त रहो। संसार तो शान्त नहीं है। हर ओर उथल पुथल मच रही है। कितने ही उतार चढ़ाव होते हैं। बाढ़ आती हैं, भूकम्प आते हैं, गांव उजड़ते हैं, शहर नष्ट होते हैं, बच्चे अनाथ होते हैं, विनाश नाच उठता है। इन सबके होते हुए शान्त रहना यह है शम। तुम्हारे शान्त होने से संसार बदलेगा नहीं। इसी प्रकार चलता जायेगा। विचार कर देखो, यह संसार क्यों बना ? इसलिए कि लोग अपने किये कर्मों का फल भोग सकें। नये और उत्तम कर्म करके ईश्वर के पास पहुँच सकें। ऐसी दुनियाँ में पूर्ण शांति मिलेगी कैसे ? भगवान् राम को भी–चौदह वर्ष तक जंगलों में भटकना पड़ा। भगवती सीता को भी रावण की कैद में जाना पड़ा। जब तक शरीर है तब तक सुख और दुःख, पाप और पुण्य, रोग और शोक सब को रहना है। यदि दुःख का अन्त चाहते हो तो केवल एक ही रास्ता है कि अपने कर्म को करते जाओ और शान्त रहो। एक कवि ने कहा था:-

या खून पसीना करके बहा, तान के चादर सोता जा।
यह नाव तो चलती जाएगी, तू हंसता रह या रोता रह॥

तुम्हारे हंसने या रोने से संसार बदलेगा नहीं। केवल अपना कर्त्तव्य पूरा करो और शान्त रहो। इन जलती हुई ज्वालाओं में, दहकते हुए ज्वाला मुखियों में डोलने दो संसार का जहाज। तुम अडोल होकर बैठे रहो। यह है शम, छः सम्पत्तियों में से एक सम्पत्ति। शेष सम्पत्तियों की बात अगले भाषण में बताऊंगा।

ओ३म् शम्

दूसरा दिन

प्यारी माताओ और सज्जनों !

जगद्गुरू शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द की बात कह रहा था मैं। दोनों ने कहा,

"अथातो ब्रह्म जिज्ञासा"

(अब ब्रह्म की खोज आरम्भ होगी) कहने से पूर्व कहने वाले में चार गुण होने चाहियें। वेदान्त और आत्मिक ज्ञान की भाषा में इनचार गुणों को "साधन चतुष्टय" कहते हैं। श्री शंकर ने विवेक चूड़ामणि और तत्व बोध में और महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में इनका वर्णन किया है। कुछ कह सकते हैं कि खोज तो ब्रह्म की करनी है, फिर पहले इन चार गुणों की क्या आवश्यकता है क्या कोई व्यक्ति बिना पढ़े लिखे जा कर कह सकता है कि, "मुझे इञ्जि-नीयरिंग के कालिज में प्रविष्ट करके इञ्जिनीयरिंग की या मैडिकल कालिज में प्रविष्ट करके डाक्टर की डिगरी दे दो ? नहीं, इन कालिजों में प्रविष्ट होने में पूर्व कुछ और डिगरियां प्राप्त करनी पड़ती हैं। इसी प्रकार "ब्रह्म प्राप्ति" के कालेज में प्रविष्ट होने से पूर्व भी चार साधनों को अपना कर चार गुण अपने अन्दर उत्पन्न करने पड़ते हैं। ये चार गुण हैं "आत्मा और अनात्मा" का विवेक, लोक और परलोक में कर्म के फल से वैराग्य, "षट् सम्पत्ति" और मुक्ति की तीव्र इच्छा।

इन चारों गुणों का वर्णन करते हुए जगद्गुरू शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि के ६४वें श्लोक में कहते हैं, "जैसे रोगी पुरुषों का रोग केवल औषध का नाम सुन लेने मात्र से दूर नहीं हो जाता, ऐसे ही भव बन्ध से ब्रह्म का साक्षात् अनुभव किए बिना केवल यह कह देने से कि मैं ब्रह्म

हूँ, कोई मुक्ति नहीं पा सकता। मैं ब्रह्म हूँ ऐसा कहने का अधिकार केवल उस व्यक्ति को है, जिसने इन चारों गुणों को क्रियात्मिक रूप देकर परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है।" आगे चलकर एक और स्थान पर उन्होंने कहा है, "सब शत्रुओं को नष्ट किये बिना और सबको विजय किये विना जैसे कोई व्यक्ति 'मैं राजा हूं, ऐसे कहने से राजा नहीं हो जाता, उसी प्रकार इस भव सागर को पार उतरे बिना कोई व्यक्ति मैं ब्रह्म हूं कहने से मुक्त नहीं हो सकता।"

इन चार गुणों की चर्चा मैंने कल की थी। उनमें से 'षट् सम्पत्ति" छः प्रकार की सम्पत्ति में से पहली सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी कहा था। यह सम्पत्ति है "शम"। प्रत्येक दशा में अपने आप को शान्त रखना। सुख में और शान्ति में तो सब व्यक्ति शान्त रहते ही हैं। जब सुख और शान्ति दोनों न हों। चहुँ ओर ज्वालायें जल रही हों, उथल पुथल हो रही हो। पृथ्वी कांपती हो, नौका डगमगाती हो। तूफान चीखता फिरता हो, बाढ़ डराती हो, तब भी शान्त रहना इसका नाम "शम" है।

आप कहेंगे संसार में कौन है जो शान्त रहना नहीं चाहता, कौन है जो दुःखी होना चाहता है, कौन है जो भूखा रहना चाहता है, निर्धन होना चाहता है, चिन्ता में डूबना चाहता है ? परन्तु जब यह सब कुछ हो तब व्यक्ति शान्त रहे तो किस प्रकार इस प्रश्न का उत्तर सुनिए। मनुष्य के अन्दर शान्ति तब आती है, जब उसके अन्दर मानसिक बल हो मेरा मन जब मेरा बन जाए तब शम का गुण प्रकट होता है अवश्य। आप कहेंगे मानसिक बल को उत्पन्न करने की विधि क्या है ? वह भी सुनिए। मानसिक बल को पैदा करने की विधि है संसार को उसके वास्तविक स्वरूप में समझना। दो प्रकार के तत्व हैं संसार में—एक "आत्मतत्व" है दूसरा "अनात्मतत्व"—ऐसा तत्व जो आत्मा नहीं है, केवल प्रकृति है, माया है, नाश होने वाला है। दोनों को पहचानो। जो नाश होने वाला है उसका आश्रय न लो। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो सहस्र वर्ष, लाख वर्ष, करोड़ वर्ष के पश्चात् वह समाप्त हो जायेगा

निश्चय रूप से। तब तुम निराश्रय हो जाओगे। और लाख या करोड़ वर्ष की बात क्या, यह तो प्रति क्षण परिवर्तित और नष्ट होता है। क्षण क्षण में रूंग रूप बदलता है, वास्तविक नहीं। पिता समझता है कि वह पुत्र का आश्रय लेगा, पुत्र समझता है पिता का आश्रय लेगा। दोनों नहीं समझते कि एक दिन पिता रहेगा न पुत्र। एक मनुष्य मित्र का सहारा ढूँढ़ता है, दूसरा शक्ति का, तीसरा शासन का। मैं तो यह कहता हूं कि माया को अपने स्थान पर समझो, यह ठगनी है, सदा साथ नही देगी। सर्वदा साथ देने वाला वेद के अनुसार परमात्मा है। वेद में कहा है:—

"प्रजा पति तुझसे बड़ा संसार में कोई नहीं, जिस कामना को लेकर मैं तुझे बुलाता हूँ उसे पूरा करो। मुझे अनन्त सम्पत्तियों का स्वामी बनाओ।"

तो मैं नहीं कहता कि धन और शक्ति, शासन और सम्बन्धी बुरे हैं अच्छे हैं वे। उचित रूप से उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न अवश्य करो, परन्तु उन्हें आश्रय बना लोगे तो अवश्य धोखा खाओगे। वे सदा रहने वाले नहीं, अन्त में धोखा देते हैं। आश्रय लेना है तो उसका लो जो सदा रहता है, जो कभी धोखा नही देता। ये माता और पिता, बेंटे और बेटियां, सगे और सम्बन्धी कोई भी साथ नही जाते धन और मकान शासन और जागीर सब यहीं रह जाते हैं। मरते समय प्रत्येक व्यक्ति को यह बात अनुभव होती है। सिकंदर भी कहता है, मेरे हाथ खोल दो जिससे लोग देखें कि उनमें कुछ नहीं। मैंने जीते जी इस बात को अनुभव किया। कलाश की यात्रा में मेरे दस साथी थे, ६ बंगाली, एक मद्रासी। गरवयांग से हम लोग चले तो अपने लिए तम्बू इकट्ठे लिए। पथ प्रदर्शक लिया। खाने का राशन भी उठा लिया। मैं हसता बहुत हूँ। दूसरों को भी हंसाता हूं। मेरे वे सब साथी कहते थे, "आनन्द स्वामी तेरे साथ रहने में जो आनन्द है, वह हमने कभी देखा नहीं, हम तो अब तेरे साथ ही रहेंगे।" मैंने हंसते हुए कहा'

"रहो ना, इससे अच्छा क्या है।" परन्तु वापस आती बार मैं वर्फ से गिर पड़ा। लिप्पू लेक घाटी पर बर्फ बहुत थी। पांव फिसला। दूर तक फिसलता गया। बर्फ के एक तोदे ने रोक लिया, नहीं तो आज आपको यह भाषण न सुनना पड़ता। कठिनता से उठा—परंतु पांव चिल्ला उठा कि मैं टूट चुका हूं।" उसे घसीटता हुआ "पंजम" तक पहुंचा। 'पंजम' नगर या ग्राम नहीं केवल एक खुले वीरान मैदान का नाम है मेरे बंगाली साथियों ने जब देखा कि यह तो चल नहीं सकता, तो मुझे वहीं छोड़कर चले गये, थोड़ी देर पश्चात् मद्रासी आये, वे भी जल्दी का बहाना करके चले गए, उन्हें गरबियांग पहुंचना था। मैं अकेला रह गया चल नहीं सकता, आस पास कोई व्यक्ति नहीं। तभी "कीच खम्बा" का भाई आया। उसें मैंने कहा कि मैं चल नहीं सकता, कीच खम्बा को बोलो कि या तो झब (तिब्बति बैल) भेजे या कम्बल जिससे रात्रि व्यतीतकर सकूं। पर्याप्त रात्रि व्यतीत होने पर कीच खम्बा आया। मुझे साथ लेकर गरबियांग पहुंचा। वहां पहुंच कर सुना कि बंगाली और मद्रासी सब आगे चले गए हैं। मैं चल नहीं सकता था। एक दिन पड़ा रहा, दो दिन पड़ा रहा, अंत में कीच खम्बा ने कहा, "यहां कब तक पड़े रहोगे, सर्दी बढ़ी जाती है, कुछ ही दिनों में बर्फ पड़ने लगेगी, मार्ग बंद हो जायेगें। एक डाण्डी करालो, उसमें धार-चूला तक चले जाओ उससें आगे घोड़ा मिल जाएगा। काफी रुपयों पर एक डाण्डी कर ली गई। छः कुलियों ने उसे उठाया। धार चूला की ओर चले हम लोग। रात्रि हुई तो जंगल मे ही एक स्थान पर ठहर गए। देवदार का एक बड़ा वृक्ष था उसके नीचे मैं लेट गया। मेरे पास कुलियों ने अग्नि जला दी जिससे जंगली पशु न आयें। उसी समय दो कुली नीचे से आये। उन्होंने बताया कि आगे पहाड़ टूट गया है, जाने का मार्ग नहीं दो साधु टूटे हुए पहाड़ मे जाने का प्रयत्न करते हुए मर गए हैं। "मेरे कुलियों ने सुना तो बोले, "हम आगे नहीं जायेंगे" मैंने कहा, "अभी तो सो जाओ, प्रातः उठकर देखेंगे कि क्या करना है।" परन्तु जब प्रातः मैं उठा तो देखा कुलियों का कहीं चिह्न भी नहीं। वे रात

के अंधेरे में ही चले गए थे। मैं चकित हुआ कि अब क्या करूँ। जलती हुई अग्नि मेरे पास थी। कुली कृपा करके मेरे कमण्डल में पानी भर गए थे। केवल छः बिस्कुट मेरे पास थे। चल मैं सकता नहीं था। नदी भी आधा मील नीचे थी। दिन भर बैठा रहा। रात्रि आ गई। अग्नि में कुछ और लकड़ियां डाल के बैठा रहा। दूसरा दिन हो गया। इसी प्रकार तीन दिन व्यतीत हो गए। तीन रातें व्यतीत हो गईं। छः बिस्कुट जो मेरे पास थे, वे भी समाप्त हो गए पानी भी समाप्त हो गया। मैं ने समझा अब मेरा अन्तिम समय आ गया है। उस समय कौन था मेरा ! हनुमान रोड वाले, कनाटप्लेस वाले, किसी आर्य समाज का मंत्री, किसी सभा का प्रधान, कोई भी नहीं था, किसी का आश्रय न था। उस समय मेरे हृदय के भीतर से कोई चिल्ला उठा

किस संग कीजे मित्रता, सब जग चालन हार।
निश्चल केवल है प्रभु, उन संग कीजे प्यार॥

उस समय बेटे नहीं थे, बेटियां नहीं थीं, जागीर नहीं थी, व्यापार नहीं था, जिस आर्य समाज के लियें कार्य किया उसका कोई प्रधान, मंत्री भी नहीं था। वे बंगाली नहीं थे जिन्होंने कहा था, "आनन्द स्वामी तू बहुत अच्छा है।" वे मद्रासी नहीं थे जो कहते थे, "सदा तेरे साथ रहेंगे।" कोई नहीं था, केवल प्रभु था एक उसकी कृपा से तीसरे दिन की सांय कुछ नेपाली कुली आयें। उनकी सहायता से में धारचूला पहुँचा।

अरे सावधान ! सम्भलकर देखो। जिस संसार के पीछे तुम पागल हुयें जाते हो यह किसी के साथ नहीं गया, कभी किसी के साथ जायंगा नहीं, यह नष्ट होने वाला है। सदा साथ देने वाली नहीं हैं, इस पर विश्वास मत करो।

इस प्रकार मन को समझाओगे तो मन वश में आयेगा। मन वश में आ जाये तो फिर आनन्द भी आयेगा। स्वप्न देखते समय इन्द्रियां सो

जाती हैं, मन जागता रहता है। मन भी सो जाये तो गाढ़ निद्रा आ जाती है। केवल आत्मा जागता रहता है। जागकर मनुष्य कहता है, "आज सोने में बहुत आनन्द आया।" अरे ? आनन्द किसको आया तुम तो सो रहे थे ! आया उसको जो कभी सोता नहीं, जो सदा जागता है—आत्मा। इस आत्मा को जान लेने से मनुष्य प्रत्येक दशा में शांत रहता है। यह पहला साधन है। शम का अधिकारी बनने के लिए मन को वश में करो।

जगद्गुरू शंकराचार्य से उनके शिष्य ने पूछा, "जगत् को कौन जीत लेता है" जगद्गुरू बोले, "जो मन को जीत लेता है।"

बुहुत बुरा भला कहा है मन को शंकर ने। एक स्थान पर वे कहते हैं, "इच्छाओं का एक भयानक जंगल है जिसमें मन नाम का भयंकर सिंह रहता है, जो लोग आत्मा का दर्शन करना चाहते हैं उन्हें इस जंगल में नहीं जाना चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं, 'हम तो इस जंगल में जाना नहीं चाहते, यह सिंह ले जाता है, यह सिंह है जो छोड़ता ही नहीं, इससे छुटकारा कैसे पायें !"

महाराज जनक से भी एक बार किसी ने यह प्रश्न पूछा था। जनक एक वृक्ष के पास खड़े थे, बोले, "यह वृक्ष मुझे छोड़ दे तो आपके प्रश्न का उत्तर दूं। पूछने वाले ने कहा, "महाराज आप ज्ञानी होकर मूर्खों की सी बातें करते हैं, वृक्ष ने आपको नहीं पकड़ रक्खा है, आपने वृक्ष को पकड़ रक्खा है, यह वृक्ष तो जड़ है यह आपको क्या पकड़ेगा ?"

आजकल वह व्यक्ति होता। आजकल जनक ऐसा करते तो वह व्यक्ति उन्हें कहता:—

फ़ेलेबद[1] तो खुद करें लानत[2] करें शैतान पर।

१—बुरा कर्म २—धिक्कार।

जनक ने कहा, तू ठीक कहता है भाई, यह वृक्ष जड़ है, इस ने नहीं, मैंने इस को पकड़ रक्खा है, परन्तु याद रख मन भी तो जड़ है उसने तुम्हें पकड़ नहीं रक्खा, फिर मुझ से क्यों कहते हो कि वह छोड़ता नहीं। " यह है दूसरा साधन मन को वश में करने का। मन की वास्तविकता को समझो, वह जड़ है, उसमें कोई शक्ति नहीं, शक्ति तुम्हारे अन्दर है, ऐसा समझोगे तो मन वश में अवश्य जायेगा।

दूसरा साधन है विचार-निरंतर यह सोचना कि मेरा लक्ष्य क्या है बार बार सोचो, लक्ष्य प्राप्ति के लिये एक तीव्र इच्छा अपने अन्दर उत्पन्न करो, सोते उठते बैठते जागते उनका ध्यान रक्खो

ज्यों त्रिया पंहर बसे सुरत रहे पीया मांहि।
तैसे नर जग में रहे प्रभु को विसरे नांहि॥

आजकल वैज्ञानिक भी कहते हैं यदि किसी बात को बार बार सोचो तो वह अवश्य होती है। कभी थोड़ा समय लगता है कभी अधिक किसी न किसी समय होती है।

परन्तु आजकल हम क्या सोचते हैं कोई सोचता है मैं मन्त्रीबन जाऊं कोई सोचता है मेरे मकान में बिजली लग जाये। कोई सोचता है मेरे पास धन के ढेर लग जायें। याद रक्खो। इन नाशवान वस्तुओं के लिये सोचते रहोगे तो अन्त में नाश ही मिलेगा। उपनिषद कहता है कि मनुष्य अपने बनाये हुए संसार में उत्पन्न होता है। आप कहेंगे कि आर्य समाज के प्लेटफार्म से मैं यह क्या कहता हूं। परन्तु मैं वह कहता हूं जो वेद कहता है। सृष्टि में शक्ति ईश्वर की है, शेष सब कुछ आत्मा की इच्छानुसार है। वह इच्छा करता है, सोचता है, वैसे ही उसका संसार बनता चला जाता है, इसी लिये कहते हैं कि मां अपने बच्चे को बुरे संस्कार न दे। अच्छी भावनायें अच्छे विचार उसे देने का प्रयत्न करे। उसे दूध पिलाते समय अच्छा बुरा वह जो कुछ सोचती है, उसका बच्चे पर प्रभाव पड़ता है। मैं

कई स्थानों पर जाता हूं। माता पिता कहते है हमारा बच्चा बहुत नट खट है उपद्रव बहुत करता है। मैं उन्हें कुछ नहीं कहता, परन्तु मन ही मन सोचता हूं, इसमें दोष किसका है ? जैसा तुम ने बना दिया वैसा बन गया वह अब उसे कोसते क्यों हो ? इस लिये वेद में प्रार्थना करता हुआ भक्त कहता है:—

हे प्रभो मेरे मन में अच्छे संकल्प पैदा हों, अच्छे विचार पैदा हों। परन्तु केवल प्रार्थना करने से तो कुछ नहीं होता। प्रार्थना करो अवश्य परन्तु उसके साथही प्रार्थना के अनुकूल कर्म भी हो तो करो बम्बई जाने की इच्छा हो तोउस गाडी मैं चढ़ो जो बम्बई जाती है यदि अमृत सर जाने वाली गाड़ी में बैठ जाओगे तो बम्बई कभी नहीं पहुँच सकोगे।

तीसरा साधन है त्याग-ब्रह्मको और ईश्वर को पाना चाहते हो तो उसके गुणों की अपने अन्दर लाने का भी प्रयत्न करो। उसका सबसे महान गुण है त्याग उससे बड़ा त्यागी और कोई नहीं। सब कुछ दे देता है अपने लिये कुछ भी उसको चाहिये नही त्याग में सुख कितना है, इसको कुछ लोग समझ नहीं पाते। एक कथा सुनिये एक था कृपण। इनना कंजूस कि अपने आप पर भी धेला खर्च नहीं करता था लाखों का स्वामीथा फटे कपड़े पहने रहता। केवल एक अच्छी बात थी उसमें सत्संग में जाता था। वहां भी उसे कोई पूछता न था। सब से अन्त में जूतों के पास बैठ जाता, कथा सुनता रहता। भोग पड़ने का दिन आया, तो सब भेंट चढ़ाने कोई न कोई वस्तु लाये। वह कृपण भी एक मैले से रूमाल में बान्ध के कुछ लाया सब लोग अपनी लाई वस्तु रखते गये, वह भी आगे बढ़ा। अपना रुमाल खोल दिया उसने। उसमें अशरफीयां थी पौण्ड और सोना-इन्हें पंडित जी के समक्ष उण्डेल कर वह जाने लगा पण्डित ने कह"नहीं नहीं सेठ जी। वहां नहीं यहां मेरे पास वैठो। सेठ ने बैठते हुए कहा "यह तो रुपयों का सम्मान है पण्ग्णित जी, मेरा सम्मान तो नही।" पण्डित जी ने कहा, "भूलते हो सेठ जी, रुपया तो तुम्हारे पास पहले भीथा। यह तुमारे रुपये का नही त्याग का सम्मान है।

एक और कथा सुनिये। एक साधु किसी नगरी में रहता, भक्ति के गीत गाता था। लोग उसका सम्मान करते, उसे कितनी ही वस्तुएं देते साधु ने अपने शिष्य से कहा, बेटा चलो किसी दूसरे नगर में जायें। "शिष्य ने कहा, "नहीं, गुरू महाराज यहां चढ़ावा बहुत चढ़ता है, कुछ पैसे जमा हो जाये फिर चलेंगे। गुरू ने कहा, "पैसे को जमा करके क्या करेगा। चल मेरे साथ, पैसा जमा नहीं करना है हमें। "चल पड़े दोनों। शिष्य ने कुछ पैसे लेकर रखे थे उन्हें उस ने धोती में बान्ध रखा था। चलते चलते मार्ग में नदी पड़ गई। एक नौका वहा थी नौका वाला पार ले जाने के लिये दो दो आने मांगता था। साधु के पास पैसे नहीं थे। शिष्य देना नहीं चाहता था। दोनों बैठ गये, दो पहर हो गई। सन्ध्या हो गई, रात हो गई, वे बैठे थे। रात को नाविक अपने घर जाने लगा तो बोला, "बाबा। तुम यहां कब तक बैठे रहोगे यह है जंगल, रात को सिंह इस किनारे पर पानी पीने आता है। अन्य जंगली पशु भी आते है, वे तुम्हें मार डालेंगे। शिष्य ने कहा, तुम हमें पार ले चलो।"नाविक ने कहा, "मैं तो दो दो आने लिये बिना नहीं जा सकता।" शिष्य को सिंह के विचार से लगा डर। धोती से चार आने निकाल कर बोला, "अच्छा नही मानता तो ले।" नाविक ने चार आने लिये, उन्हें पार ले गया। दूसरे पार जा कर शिष्य ने कहा, "देखा गुरू जी, "आप कहते थे पैसा इकट्टा करने की आवश्यकता नही, अब देखिये यदि हमारे पास पैसे न होते तो आज आपत्ति आती की नही। गुरू ने हसते हुए कहा, "सोच कर देख बेटा। पैसा एकत्रित करने से तुम्हें सुख नहीं मिला। पैसे को दे देने से मिला। सुख त्याग में है एकत्रित करने में नही।',

परन्तु त्याग का यह अर्थ नहीं कि कमाना भी बन्द कर दो। वेद कहता है सौ हाथ से कमाओ पाँच सौ हाथ से खर्च कर दो। जो कमाया है उस पर सांप बनकर न बैठ जाओ। जलालपुर जट्टा में एक सज्जन रहते थे जीवन भर मैंने उन्हें कुर्ता पहनते हुए नहीं देखा। एक बार

मैंने पूछा "श्रीमान आप कुर्ता क्यों नही पहनते। वे बोले, मैं शरीर पर प्रयोग करता हूँ." जब वे सज्जन मरे तो इस के घर से कई वर्तनो में बन्द किया हुआ धन मिला। इस धन का इन्हें क्या लाभ हुआ ? उनके लिये यह धन इस प्रकार था जैसे पंजाब नैशनल बैंक के चपड़ासी के लिये बैंक में पड़े हुए लाखों रुपये। न वह उन लाखों रुपयों का प्रयोग कर सकता है, नये करते है चपड़ासी उनसे अच्छी दशा में है, क्यों कि वह अपनी डयूटी पूरी करने के पश्चात् निश्चिन्त होकर सुख की नीद सोता है यह अभागा मनुष्य हर समय चिन्ता में डूबा रहता है, सो भी नहीं पाता।

चौथा साधन है सदा ईश्वर को स्मरण रखना, उसके नाम का जाप करना। ऐसा करने से मन ऊपर उठता है, वश में रहता है। कुछ लोग कहते हैं कि क्या ईश्वर के नाम का जाप-ओ३म् का जाप और गायत्री मन्त्र का जाप हर समय हो सकता है ? उठते, बैठते, चलते, फिरते भी हो सकता है ? मैं कहता हूँ कि अवश्य हो सकता है। ओ३म् हमारी मां है। गायत्री हमारी मां है। संसार के अन्दर अपनी मां को पुकारते समय क्या हम यह सोचते हैं ····· कि हम किस दशा में हैं। बच्चा किसी भी दशा में हो, कीचड़ में लथ पथ हो या नहा धोकर अच्छे कपड़े पहने हुए जब भी वह मां को बुलायेगा, और उसकी पुकार माँ के कानों में पहुँचेगी, तो वह पुकार को सुनेगी अवश्य। बच्चा यदि कीचड़ में लथ पथ है, धूल से अटा पड़ा है, तो भी वह उसे उठाकर हृदय से लगा लेगी। ईश्वर हमारी माँ है। उठते, बैठते, चलते, फिरते, सोते, जागते किसी भी समय उसे पुकारना और याद करना ठीक है।

तुलसी अपने राम को हीज भजो या खीज।
भूमि पड़े उपजेंगे ही, उल्टे सीधे बीज॥

जो लोग हर समय ईश्वर को याद करते हैं, ईश्वर को अपने सामने मानते हैं, उनके मन में और वाणी में एक महान् शक्ति जाग उठती है।

तानसैन के गुरु थे स्वामी हरिदास। अकबर ने एक बार उनका गाना सुना। मोहित हो गया। तानसैन से बोला, तू ऐसा क्यों नहीं गा सकता ?" तानसैन ने कहा मैं गाता हूँ आपके लिए। वे गाते हैं ईश्वर के लिए। मैं हूँ आपके दरबार का गवैया, वे हैं ईश्वर के दरबार के गायक। मुझ में और उनमें वही अन्तर है, जो आपके और ईश्वर के दरबार में है।" और जो कुछ तानसैन ने कहा वह मिथ्या नहीं। जो लोग ईश्वर का नाम लेते हैं, हर समय उसके गुण गाते हैं, उनके मन की दशा दिन प्रति दिन ऊपर से ऊपर होती चली जाती है। वे सारे परिवार को एक समझने लग जाते हैं। उस अवस्था पर पहुँचते हैं जहां वेद प्रत्येक मानव को पहुँचने का संदेश देता है। वेद कहता है, "तुम में से कोई छोटा या बड़ा नही, ईश्वर ने सबको एक जैसा बनाया है, मिल कर आगे बढ़ो, सौभाग्य और आनन्द के लिये, सुख और शान्ति के लिए।" वेद के इस संदेश को समस्त संसार यदि सुन सके, यदि इस पर आचरण कर सके तो फिर किसी साम्यवाद और समाजवाद की आवश्यकता नहीं रहती है। वेद कहता है ईश्वर तुम्हारा पिता है, धरती तुम्हारी माता है, तुम सब भाई भाई हो। इससे बड़ा साम्यवाद भी कोई हो सकता हैं। परन्तु यह दशा उत्पन्न होती है उस समय जब मनुष्य हर समय ईश्वर का स्मरण करता है। उसका नाम लेता है, उसके गीत गाता है।

मन के संबन्ध में दो बातें और कहनी हैं, एक यह कि मन है क्या ? बहुत शोर सुनते हैं इसका, परन्तु कोई राजा या महाराजा नहीं, प्रधान मन्त्री या राष्ट्रपति नहीं। यह तो एक नौकर है, जो भगवान् ने आत्मा को दिया। तुम्हारा मुण्डु हैं। जड़ है। इसलिए मिला कि इससे काम लो, इसलिए नहीं कि इसके हाथों में अपनी नकेल दो। जब सृष्टि नहीं थी और प्रकृति रजो गुण, तमोगुण सतोगुण से रहित, परमाणुओं का विशाल सागर बनके सोई पड़ी थी, तब ईश्वर की प्रेरणा शक्ति ने इस को कहा, "जाग।" जागी वह। उसमें महा तत्व उत्पन्न हुआ उससे समष्टि बुद्धि उत्पन्न हुई। तब तन्मात्रायें उत्पन्न हुई, मन बुद्धि और

चित्त उत्पन्न हुए। ये सब के सव तो प्रकृति के परिवर्तित रूप हैं। प्रकृति है जड़। इसलिए ये सब के सब भी जड़ हैं। मन भी जड़ है। इस जड़ वस्त्र के पीछे भागते फिरें इसके संकेतों पर नाचते रहें, तो क्यों हम तो जड़ नहीं। इसे हमारी इच्छा के अनुकूल चलना चाहिए, हमें इसकी इच्छा के अनुसार नहीं।

दूसरी बात यह कि मन बनता कैसे है ? आकाश या पाताल से नहीं आता। जो अन्न हम खाते हैं उससे मन बनता है। जो कुछ भी हम खाते हैं, शरीर के अन्दर जाकर उसके तीन भाग हो जाते हैं। सब से ठोस भाग मल बन कर बाहर निकल जाता है। उससे सूक्ष्म भाग शरीर की शक्ति बनती है। सबसे सूक्ष्म भाग मन बन जाता है। इसी लिए कहते हैं कि जैसा अन्न खाओगे वैसा मन बनेगा। जो व्यक्ति गन्दा खोटा अन्न खाता है, तो उसका मन कभी अच्छा होगा नहीं। अन्न को जिस भावना से कमाया हो, बनाया हो और तैयार किया हो, सबका प्रभाव मन पर पड़ता है। बूढ़े भीष्म पितामह जब तीरों की शैया पर लेटे थे और धर्म ज्ञान की बड़ी बड़ी बातें कह रहे थे तब द्रौपदी ने उनसे कहा "पितामह। इस समय तो आप बहुत बड़ी बड़ी बातें कर रहे हैं, बहुत अच्छी बातें हैं ये ज्ञान की। परन्तु जब दुर्योधन और दुःशासन ने भरे सभा भवन में मेरा अपमान किया, उस समय आपका यह धर्म और ज्ञान कहाँ था।" भीष्म पितामह दुःख के साथ बोले, "तू ठीक कहती है बेटी। उस समय मेरीबुद्धि भ्रष्ट हो गई थी दुर्योधन का पाप भरा अन्न मैं खा रहा था उसने मेरे मन को मलिन कर दिया। अर्जुन के तीरों से रक्त निकला, कई सप्ताह से निकला जाता है, तो उस अन्न का प्रभाव समाप्त हो गया।"

एक साधु रहता या किसी जंगल में। कितने ही लोग उसके दर्शन करने को जाते। जो भी जाता उसे शांति मिलती। एक दिन उस देश के राजा भी गए। देखा साधु एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। सर्दी और वर्षा से बचने का कोई प्रबन्ध नहीं है। राजा ने कहा, "महात्मन्। यहाँ तो बहुत

कष्ट होता होगा, आप मेरे साथ चलिये, महल में रहिये।" साधु पहले तो माना नहीं, राजा ने बहुत आग्रह किया तो बोले, "अच्छा चलो।" महल में आये। एक सुन्दर कमरे मे ठहरे। हर समय नौकर उपस्थित रहने लगे। अच्छा भोजन मिलने लगा। तीन मास व्यतीत हो गये। राजा उसकी पूजा करते, रानी उनमें श्रद्धा रखती। एक दिन रानी नहाने के लिए स्नानागार में गई। नहा कर उठी तो वह हीरों का हार पहनना भूल गई, जो उसने उतार कर स्नानागार में रख दिया था। हार वहीं पड़ा रहा। रानी के पश्चात् साधु स्नानागार में गया,हार को देखा, उठा कर अपनी कोपीन में छुपा लिया। स्नानागार से निकले, महल से बाहर चले गए। कुछ देर के पश्चात् रानी को हार का ध्यान आया, बोली, स्नानागार में छोड़ आई हूँ, उसे ले आओ।' परन्तु वहाँ तो हार नहीं था। खोज होने लगी। पूछा गया गुसलखाने में रानी के पश्चात् कौन गया था ? पता लगा कि महात्मा गए थे। महात्मा की खोज होने लगी। महात्मा मिले नहीं। राजा को ज्ञात हुआ तो उसने सिपाहियों को आज्ञा दी, "उस साधु के पीछे जाओ, उसे पकड़ कर ले आओ।" इधर वे महात्मा शहर से बाहर निकले। जंगल में चले गये। दिन भर चलते रहे। पांव थक गये। भूख भी सताने लगी तो जंगल का एक फल उतार कर खा गये। फल था एक औषधि, उससे दस्त लग गये। इतने दस्त आये कि महात्मा निर्बल हो गये। तभी उन्हें हार का ध्यान आया। उसे देखते हुए बोले, "मैं इसे क्यों उठा लाया ? मैंने चोरी क्यों की।" उसी समय वापस लौट पड़े। आधी रात के समय राजा के महल पर पहुँचे। आवाज दी। राजा जागे। महात्मा ने उसके पास जाकर कहा, "राजन् आपका यह हार है ले लो। मैं यहाँ से उठा कर ले गया था। मुझसे अपराध हुआ मैं क्षमा मांगने आया हूँ। "राजा ने आश्चर्य कहा, "वापस ही लाना था तो तुम इसे ले क्यों गये थे ? "साधु ने कहा, "राजन् ! क्रोध न करना, तीन मास तक मैं तुम्हारा अन्न खाता रहा उससे मेरा मन पापी हो गया, जंगल में जाकर दस्त आये। शरीर शुद्ध

हो गया, तेरे अन्न का प्रभाव समाप्त हो गया। मैं ने वास्तविकता को जाना और वापस आ गया।"

यह है अन्न का प्रभाव। इसीलिए यूनान के फिलासफर पैथा गोरस ने कहा था, "तुम मुझे बताओ कौन आदमी क्या खाता है, मैं तुम्हें बताऊँगा कि वह क्या सोचता है।"

तभी पूज्य स्वामी जी ने अपनी घड़ी को देखा, बोले, "हम मन की बात चिल्लाते रहे यहाँ पूरा घण्टा चला गया। अच्छा, बाकी फिर।"

ओ३म् शम्

तीसरा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनों !

पिछले दो भाषणों में हम ने पहली बात यह देखी कि जगद्गुरू शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द एक ही मिशन को लेकर आगे बढ़े। दोनों ने मानव को ऊपर उठाने और संसार में शान्ति लाने का साधन ब्रह्मजिज्ञासा को बताया। दोनों ने यह भी कहा कि ब्रह्म को खोजने से पूर्व जिज्ञासुमें चार गुण होने चाहिए। इन चार गुणोंमें से एकगुण है "षट् सम्पत्ति, पहली सम्पत्ति का नाम है "शम" वह शक्ति कि मनुष्य प्रत्येक दशा में शान्त रहे। प्रत्येक दशा में शान्त रहने के लिए मन को वश में रखना अत्यावश्यक है। मन को वश में रखने के चार साधन मैंने कल बताये। उन में से एक है संसार की वास्तविकता को समझना, आत्मा क्या है और अनात्मा क्या है, इस बात को जानना। दूसरा साधन है अच्छे विचारों को जगाना। तीसरा साधन है त्याग। चौथा साधन है हर समय ईश्वर को याद रखना, उस के नाम का जाप करना। पांचवां साधन है उत्तम अन्न का सेवन छटा साधन आज बताऊंगा। जिन लोगों के मन में नित्य चिन्ता रहती है, जो हर समय चिन्ता के सागर में डूबे रहते हैं, वे इस साधन को ध्यान पूर्वक सुनें। साधन यह है कि अपनी आवश्यकताओं को कम करो। प्राचीन काल में हमारे पूर्वज कहते थे कि आवश्यकताओं को कम करने से शान्ति होती है। हम ने यह समझ रक्खा है कि आवश्यकताओं को बढ़ाने में ही कल्याण है। पहले हम आवश्यकताओं को बढ़ाते हैं, फिर इन्हे पूरा करने के लिए धन कमाना आरम्भ करते हैं। घर में देवी भी कमाती है। "देवा" भी कमाता है, फिर भी आवश्यकतायें पूरी नहीं होती। तब चिन्ताओं के बादल उमड़ आते हैं। हर समय "और लाओ, और लाओ" की पुकार होती रहती है। अरे यह "मनुवा राम" है न, इस को ढीला

मत छोड़ो। एक बार इस को ढ़ील दोगे तो फिर यह तुम पर छा जायेगा, अमर बेल की भांति। वृक्ष नहीं बढ़ेगा उस समय, बेल बढ़ेगी। जिस वृक्ष पर अमर बेल छा जाये वह वृक्ष सूख जाता है। जिस मनुष्य पर मन की अमर बेल छा जाये उसका आत्मा दुःखी हो उठता है। मन को वश में करने और शान्त रखने का उपाय केवल एक है कि अपनी आवश्यकताओं को कम करो। यह शरीर है तुम्हारा, इस से तुम को कार्य लेना है, इसे भोजन खिलाओ अवश्य, परन्तु इसकी क्या आवश्यकता कि भोजन के साथ उसको चटनी, मटनी, खटनी भी खिलाते जाओ, और पेट के अन्दर एक "अखिल भारतीय भोजन सम्मेलन" आरम्भ कर दो। जब तुम बहुत सी चीज एक साथ खा लेते हो तो जानते हो कि पेट में क्या होता है। भिण्डी एक ओर जा के बैठ जाती है, कहती है, "मझे तो देर में पचना है मैं बैठती हूं, तुम पच लो।" आलू कहते हैं, "हम भी विश्राम करेंगे, अभी तो बहुत सी वस्तुएं हैं पचने के लिये, हमें जल्दी क्या है।" मूंग की दाल कहती है, "मैं तो झट पच जाती हूं, मेरे लिये जल्दी क्या है, दूसरे आग में पड़ें। वे पच जायें तो मैं आगे बढ़ूंगी।" इस प्रकार उनका झगड़ा होता है। कुछ भी नहीं पचता। तब पेट खराब होता है, रोग आते हैं। रोगों को दूर करने के लिए डाक्टरों के पास जाना पड़ता है, औषधियां क्रय करनी पड़ती हैं, उन पर रुपया खर्च होता है, तब रुपया कमाने की धुन सवार होती है। उत्तम उपायों से रुपया न मिले तो लोग बेइमानी से कमाने का प्रयत्न करते हैं। कहां से आरम्भ होकर कहां पहुंच जाती है बात। तब आरम्भ में ही अपनी आवश्यकताओं को कम क्यों न करो। थोड़ा क्यों नहीं खाओ। याद रक्खो मन को वश में करना है और चिन्ताओं से मुक्ति प्राप्त करनी है तो आवश्यकताओं को कम करो, उन्हे बढ़ाओ नहीं। ये छः साधन हैं मन को वश में रखने के। इन पर चल कर देखिये। मन आप के वश में आयेगा निश्चय रूप से।

"शम" के गुण को उत्पन्न करने के लिये, इस महान् सम्पत्ति को

प्राप्त करने के लिए दूसरा उपाय है योग साधन। योग का अर्थ है व्यष्टि को समष्टि में मिला देना। एक मन आप के अन्दर है, इसी प्रकार का एक मन सारे विश्व में फैला है, उसे समष्टि बुद्धि कहते हैं। एक चित्त आप के अन्दर है, इसी प्रकार का एक समष्टि चित्त बाहर है समस्त संसार में। एक प्राण आप के अन्दर है, इसी प्रकार का एक समष्टि प्राण सारे संसार में। अपने मन को, बुद्धि को, चित्त को और प्राण को विश्व में फैले हुए इस समष्टि मन, समष्टि बुद्धि, समष्टि चित्त और समष्टि प्राण के साथ मिला देने से योग का पहला अंग पूर्ण होता है। ऐसा करने से "शम" की सम्पत्ति उत्पन्न होती है।

आप कहेंगे कि यह व्यष्टि और समष्टि की बात तो समझी, परन्तु ऐसा करने का उपाय भी तो बताओ। मैं उपाय भी बताऊंगा। ऐसा उपाय है जिसे सीखने और प्राप्त करने में साधु लोग वर्षों लगा देते हैं मैं आप को कुछ वाक्यों में बताऊंगा फिर करना न करना आप का कार्य है।

देखिये प्रातः ३ से ६ बजे तक का समय २४ घन्टों में सब से उत्तम समय होता है। इस समय में नहा धोकर, नहीं तो मुंह हाथ धो कर एक स्थान पर बैठ जाओ। ऐसे स्थान पर बैठो जहाँ ध्यान भक्ति और यज्ञ के अतिरिक्त और कुछ न होता हो। परन्तु प्रति दिन उसी स्थान पर बैठो, कोई भी अन्य बात वहां न होने दो। यदि बड़ा घर है तो एक कमरा इस कार्य के लिये निश्चित करो। बड़ा नहीं एक कमरा ही है तो उस के एक भाग को इस कार्य के लिए निश्चित करो। अपने समक्ष धूप या अगरबत्ती जलाओ, घी का दीपक जला के रख लो पानी का लोटा रख लो। और बैठ जाओ। एक आसन का अर्थ है बैठने की ऐसी विधि जिस में साधक अधिक से अधिक समय तक बिना किसी कष्ट के बैठ सके। सदा एक ही आसन में बैठो। पद्मासन, सिद्धासन, शवासन, ऐसे कई आसन हैं। उन सब में से किसी एक आसन को अपना लो। उस को अपनाये रक्खो। सिद्धासन और पद्मासन उत्तम

हैं। उन में पालती मार कर पीठ और ग्रीवा को एक सीध में रख कर बैठना होता है।

परन्तु आजकल तो विचित्र समय आ गया है न। कई स्थानों में लोगों को पालती मारना ही भूल गया हैं। मैं अफरीका में गया, वहाँ कुछ लोग पालती मारना ही नहीं जानते। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि जो लोग सिद्धासन या पद्मासन में नहीं बैठ सकते, वे योग के मार्ग पर चल ही नहीं सकते। जो लोग पालती न मार सकें, उन के लिये अच्छा है कि वे शवासन को अपना लें। शव कहते हैं लाश को। लाश की भाँति लेट जाओ। पाँव के अंगूठों को कपड़े का एक छल्ला बना कर उसमें डाल दो, कमर के ऊपर कपड़ा लपेट कर हाथों को कपड़े के के अन्दर डाल दो, जिससे हाथ और पाँव न हिलें। और फिर चित्त लेटे रहो। इसको शवासन कहते हैं। परन्तु इस आसन को अपनाओ या किसी अन्य आसन को जिसे अपना लो उसे छोड़ो नहीं, सदा उसको अपनाये रक्खो। आसन लगाने के पश्चात पाँच वार गायत्री मन्त्र का जाप इस प्रकार करो कि तुम्हारे कान तुम्हारी आवाज को सुन सकें। फिर आँख बन्द करके पाँच बार इस प्रकार जाप करें कि होंठ हिलें आवाज सुनाई न दे। तब होंठ भी बन्द करदो पांच वार इस प्रकार जाप करो कि बन्द मुख के अन्दर जिह्वा है और कुछ भी न हो तव जिह्वा भी बन्द करदो। कण्ठ में करो फिर कण्ठ में जाप करना भी बन्द करदो। दो आँखों के मध्य में, भौंवो के बीच, माथे में जो स्थान है, जिसे भृकुटि कहते हैं, वहाँ ध्यान करो। इस स्थान को प्रयाग भी कहते हैं। यहाँ इड़ा पिंगला और सुष्मणा नाम की तीन नाडियां तीन नदियों के रूप में आकर मिलती हैं। इन नदियों को देखने का प्रयत्न करो। बार बार प्रयत्न करने से ये नदियाँ दृष्टिगोचर होंगी, एक विशाल नदी में मिलती हुई प्रतीत होंगी। उस नदी के किनारे बैठ जाओ, वहां बैठ कर ऊपर देखो। भृकुटि से ऊपर, सिर के उस भाग में जो मस्तक से ऊपर है जिसे ललाट कहा जाता है। वहां ध्यान लगाने से एक

चमकता हुआ आकाश दिखाई देगा उससे भी ऊपर चमकता हुआ सूर्य दिखाई देगा, इस से भी आगे शीतल प्रकाश वाला चन्द्रलोक भी दिखाई देगा और यह सब कुछ करते हुए आश्चर्यजनक दृश्य दिखाई देंगे।

यह है ध्यान योग का सही और सीधा मार्ग कहने को मैंने यह बात कुछ वाक्यों में कह दी परन्तु इस पर अभ्यास करने में पर्याप्त समय लगेगा। समय लगे तो घबराओ नहीं परिश्रम करते जाओ अन्ततः उस लक्ष्य पर पहुँचोगे अवश्य।

एक था बाग, उसमें बहुत अच्छे अच्छे आम लगे थे। बाग में बन्दर आते, आमों को खाने के लिये, बाग का माली उन्हें गुलेल मारता बन्दर घायल होते, चिल्लाते, फिर मार खाते, फिर भागते। बन्दरों का बूढ़ा सरदार था उस ने सब बन्दरों को बुलाके कहा, "हम ऊंचे परिवार के लोग हैं, हम आमों के लिये बार बार मार खायें तो क्यों। अच्छी बात यह है कि हम अपने वृक्ष लगायें, उन पर आम लगें तो सुख से खायें। फिर कोई पत्थर मारने वाला नहीं होगा, कोई रोकने वाला न होगा।" सब बन्दरों ने कहा यह तो ठीक बात है, सब ने मिलके आमों की गुठलियां पृथ्वी में दबा दी। उसको पानी दिया और उनके सिरहाने बैठ गये। एक दिन बैठे रहे, दो दिन बैठे रहे, परन्तु थे तो बन्दर, तीसरे दिन उन्होंने पृथ्वी को खोद के देखना आरम्भ कर दिया कि गुठली में आम लगे या नहीं।

देखो, इस प्रकार नहीं करना, धैर्य से काम लो परिश्रम करते जाओ। प्रयत्न करते जाओ, सफलता मिलेगी अवश्य, उसके पश्चात् भी न मिले तो निराश होकर नहीं बैठ जाओ। संसार में ऐसे भी लोग हैं, जो इस लक्ष्य पर पहुँचने में आप की सहायता कर सकते हैं उनके पास जाओ वे आपके मन को स्थिर कर देंगे।

यह है "शम की सम्पत्ति को प्राप्त करने का दूसरा उपाय।

तीसरा साधन वह है कि किसी व्यक्ति को, किसी भी वस्तु को बुरा न समझो, किसी को कुदृष्टि से न देखो। यदि तुम प्रत्येक स्थान, प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक वस्तु को बुरा कहते रहोगे, प्रत्येक वात में दोष निकालते रहोगे, हर समय दूसरों पर आलोचना करते रहोगे, तो याद रक्खो कि तुम्हारा हृदय और मस्तिष्क भी वैसा ही वनता चला जायेगा। जैसा दृष्टिकोण होगा, वैसा ही तुम्हारा मन वनता जावेगा।

एक कथा सुनिये। वीरान जंगल मे एक सुन्दर मकान था। एक साधु ने उसे देख कर सोचा कितना सुन्दर स्थान यहाँ बैठ कर ईश्वर का ध्यान करूँगा।" एक चोर ने उसे देखा सोचा वाह। यह तो सुन्दर स्थान है, चोरी का माल यहां लाकर रखा करूंगा ? एक दुराचारी ने देखा सोचा यह तो अत्यन्त एकान्त स्थान है दुराचार करने के लिये इससे उत्तम स्थान और क्या मिलेगा। एक जुवारी ने देखा सोचा "अपने साथियों को यहाँ लाऊंगा, यहाँ बैठ कर हम जुआ खेलेंगे।" एक ही मकान को अलग-अलग दृष्टिकोण होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति ने अलग अलग रूप में देखा जैसा दृष्टिकोण बनाओगे, वैसा अन्तकरण बनेगा अवश्य। यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा अन्तकरण अच्छा हो दृष्टिकोण अच्छा बनाओ।

'शम' की सम्पत्ति को प्राप्त करने का चौथा साधन है प्राणायाम, पहले अपने घर में इस का अभ्यास करो। वास्तविकता को पहचानो। जो जड़ है उसका मोह छोड़ दो, अच्छी वस्तुओं के लिये इच्छा उत्पन्न करो फिर एकांन्त मे जाकर अभ्यास करो। यदि घर में ही मन को ठीक शिक्षा न दोगे तो बाहर जाके शैतानी करेगा।

नारद जी एक बार नगर में आये (दिल्ली नगर में नहीं) यहां के लोग तो बहुत अच्छे हैं) एक और नगर में आये। एक पुराना मित्र उन्हें मिला, संसार की विपत्तियों में फंसा हुआ ! नारद जी ने कहा "यहां संकट में पड़े हुए हो, आओ तुम्हें स्वर्ग ले चलू"। उसने कहा "और क्या चाहिए। दोनों पहुँच गये स्वर्ग में वहाँ सुन्दर पत्तों वाला, सुन्दर छाया

वाला कल्प वृक्ष खड़ा था। नारद ने कहा "तुम इस वृक्ष के नीचे बैठो मैं अभी अन्दर से मिलकर आता हूँ।" नारद चले गये तो उस आदमी ने इधर उधर देखा। सुन्दर वृक्ष, सुन्दर छाया, धीमी धीमी शीतल वायु। उसने सोचा कितना उत्तम स्थान है, यदि एक आराम कुर्सी होती तो मैं उस पर बैठ जाता।" वह था कल्पवृक्ष, उसके नीचे खड़े होकर जो इच्छा की जाये वह पूरी होती है। उसी समय पता नहीं कहाँ से एक आराम कुर्सी आगई। वह उस पर बैठ गया। बैठ कर उसने सोचा एक पंलग होता तो थोड़ी देर के लिये लेट जाता मैं। विचार करने की देर थी कि पलंग भी आ गया। वह लेट गया लेटते ही सोचने लगा "घर में होता तो पत्नी से कहता, मेरी टागें दबा दे, मेरा सिर मल दे।" सोचते ही बहुत सी अपसरायें वहाँ उपस्थित हो गई। कोई पांव दबाने लगी, कोई गीत गाने लगी, कोई नाचने लगी। उस आदमी ने उन सब को देखा तो सोचा, "यदि इन सब स्त्रियों के साथ मेरी पत्नी मुझे देख ले तो झाड़ू लेकर मेरी पिटाई कर डालें।" सोचना अभी समाप्त भी न हुआ था कि हाथ में झाड़ू लेकर पत्नी आ गई। धड़ा धड़ उसको मारने लगी अपसरायें भाग गई। वह पलंग से उठ कर दौड़ा। आगे आगे वह, पीछे झाड़ू को लिये हुए पत्नी। नारद जी ने लौटते हुए उसे दूर से देखा। पुकार कर बोले" मूर्ख सोचना ही था कोई अच्छी बात सोचते, यह क्या सोच बैठे तुम, यह कल्प वृक्ष है।"

सो भाई मेरे, प्राणायाम के कल्प वृक्ष के नीचे बैठकर अच्छी बातें सोचना, बुरी बाते नहीं सोचना। मन और प्राण का गहरा सम्बन्ध है। जहाँ एक जाता है वहाँ दूसरा भी जाता है मनको शान्त करने के लिये प्राणायाम एक उत्तम साधन है। जगद्गुरू शंकर और महर्षि दयानन्द दोनों ने इसकी महिमा गाई है। चार प्रकार के प्रायाम हैं रेचक (श्वास को बाहर निकालना) तब बाहर का कुम्भक (श्वास को बाहर रोके रखना) तब पूरक (स्वास को अन्दर खेचना) तब अन्दर का कुम्भक (अन्दर खेंचे हुए श्वास को अन्दर ही रोकना)। अन्दर का या बाहर का वह कुम्भक तीन मिनट का हो जाये, तो मन हाथ बांध कर

खड़ा हो जायेगा, पूछेगा क्या चाहते हो" तब हृदय में या भ्रकुटि में जहाँ भी ध्यान लगाओगे वहाँ प्रकाश दिखाई देगा। सामवेद में इसी प्रकाश का उल्लेख करते हुए कहा गया है, "मैं इस महान प्रकाश का ध्यान करता हूँ।" यह जो प्रकाश दृष्टिगाचर होगा आरम्भ में माया का प्रकाश होगा, प्रकृति का प्रकाश। इसके अन्दर प्रविष्ट हो जाओ, तब आत्मा का प्रकाश दिखाई देगा, अधिक शीतल और अधिक प्रकाशमान उस प्रकाश में ओ३म् का आश्रय लेकर आगे बढ़ो। ओं३म् का जाप करते हुए या किसी और नाम का जाप करते हुए, ओ३म् को देखने का प्रयत्न करते हुए, अथवा किसी अन्य वस्तु को देखने का प्रयत्न करते हुए आगे बढ़ो तब आनन्द का द्वार खुल जायेगा उसके दर्शन होंगें जिसके लिये योगी योग करते हैं। ज्ञानी ग्रन्थ पढ़ते हैं ध्यानी वर्षों तक कठोर तपस्या करते हैं तब तुम्हें कुछ करना नहीं होगा। सब कुछ स्वयँ हो जायेगा। कबीर की भाँति तुम भी कह सकोगे।

कबीरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पाछे पाछे हर फिरे कहत कबीर कबीर॥

मन शान्त हो जायेगा उस समय शम की वह सम्पत्ति प्राप्त हो जायेगी, जिसे षट् सम्पत्ति में सब से प्रथम स्थान दिया गया है।

शम के पश्चात् दूसरी सम्पत्ति है दम अर्थात् इन्द्रियों का दमन उन्हें वश में रखना। इन्द्रियाँ हैं दो प्रकार की। एक वे जो बाहर का ज्ञान हमारे पास लाती हैं दूसरी वे जिन से हम कर्म करतें हैं। ज्ञान लाने वालीं इन्द्रियां कहती हैं अमुक वस्तु का स्वाद बहुत उत्तम है अमुक वस्तु बहुत सुन्दर हैं, अमुक शब्द मन को मोहने वाला है। कर्म करने वाली इन्द्रियाँ कहती हैं हम उन्हें लेंगी। दोनों अपना व्यापार चलाती रहती है। मन उन का और आत्मा मन का दास बन जाता है, उस स्वामी के समान जो रथ में सवार हो। रथका सारथी घोड़ों के वश में हो, घोड़े आवारा। इन घोड़ों को, इन इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये। किस प्रकार यह हो सकता है इसके सम्बंध में एक कथा श्रवण

कीजिये। स्वामी राम तीर्थ जब प्रोफेसर तीर्थ राम थें, तब लाहौर के एक कालिज में पढ़ाते थे। रहते थे लुहारी दरवाजा में। कालिज से घर को आ रहे थे, ता लुहारी दरवाजे में उन्होंने एक व्यक्ति को टोकरी में रखकर नींवू बेचते हुए देखा। पीले रंग के रस भरे नींबू थे वे। मुख में पानी आ गया जिह्वा ने कहा, "क्रय करलो, उनका स्वाद बहुत उत्तम है।" तीर्थ राम थोड़ी देर रूके, फिर आगे बढ़ गये। आगे जाकर जिह्वा फिर मचली, उसने कहा, "नीबू अच्छे तो थे नीबू खाने में हानि क्या है ?" तीर्थ राम उल्टे आये। नींबूओं को देखा वास्तव में बहुत उत्तम थे। उन्हें देखकर फिर घर की ओर चल पड़े। थोड़ी दूर गये तो जिह्वा फिर चिल्ला उठी, "नींबू का रस तो बहुत अच्छा है, नीबू तो खाने की चीज है, उसे खानें में पाप क्या है ? "तीर्थ राम पुनः नीबू वाले के पास आये। दो नीबू मोल ले लिये। घर पहुँचे देवी से कहा "चाकू लाओ।" उसने चाकू लाकर रख दिया। रामतीर्थ चाकू को नींबू के पास और दोनों को अपने समक्ष रखकर बैठ गए। बैठे रहे, देखते रहे, अदंर से आवाज आई, "इन्हें काटो, काटनें में क्या हानि है।" राम तीर्थ नें चाकू उठाया और एक नींबू को काट दिया। मुख में पानी भर आया। अदंर से फिर प्रेरणा हुई, इसे चख कर तो देखो, इन का रस बहुत उत्तम है ,'' राम तीर्थ नें एक टुकड़े को उठा लिया, जिह्वा के समीप ले गये, नींबू को उसके साथ लगने नहीं दिया अदंर से किसी नें पुकार कर कहा, 'तू क्या इस जिह्वा का दास है, जो यह जिह्वा कहेगी, वही करेगा जिह्वा तेरी है, तू जिह्वा का नहीं।" समक्ष खड़ी पत्नी नें कहां, यह क्या करते हो, नींवू को लाये, इसे काटा, अब खाते क्यों नहीं जिह्वा नें कहा शीघ्रता करो नीबू का स्वाद बहुत उत्तम है।' राम तीर्थ शीघ्रता से उठे, कटे हुए और बिना कटे दोनों नीबुओं को उठा कर गली में फेंक दिया, प्रसन्नता से नाच उठे, मैं जीत गया, मैं जीत गया।,

यह है इन्द्रियों को वश में करने की विधि। इन की नहीं, इन के पीछे बैठे हुए आत्मा की, आत्मा के अन्दर बैठे हुए ईश्वर की प्रेरणा सुनो। महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के नवें समुल्लास में कहते हैं,

"जब इन्द्रियां अर्थों में, मन इन्द्रियों और आत्मा मन के साथ संयुक्त हो कर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे या बुरे कर्मों में लगता है, तभी बहिरमुख हो जाता है। इसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह निर्भयता और बुरे कर्मों में भय शंका और लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है, जा कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्तता है, वही मुक्ति जैसा सुख प्राप्त करता है।" इसी प्रकार महर्षि सत्यार्थ प्रकाश के सातवें समुल्लास में ये बतलाते हैं कि जब आत्मा और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता या चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उसी समय जीव की इच्छा, ज्ञान आदि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण में आत्मा के अन्दर से बुरे काम करने में भय शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय निःशंकता और आनन्द, उत्साह उठता है, वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है।" यह है सरल और सीधी विधि, अन्दर की ध्वनि सुन कर इन्द्रियों को वश में रखने की। और स्मरण रक्खो, अन्दर की ध्वनि सुनाई देती है प्रत्येक समय। नहीं सुनाई देती उन व्यक्तियों को जिन्होंने बाहर इतना कौलाहल मचा रक्खा है कि अन्दर की ध्वनि दब कर रह गई है। कमरे में घड़ी लगी हुई है। उस की टक टक कि भी होती है, परंतु बाहर यदि बाजे बज रहे हों, कौलाहल हो रहा हो, तो घड़ी की ध्वनि कैसे सुनाई देगी। बाहर का कोलाहल बन्द करो, अंदर की ध्वनि आयेगी अवश्य।

अन्दर के पट तब खुलें। जब बाहर के पट दे ॥

बाहर की इन्द्रियों को वश में करो अंदर से ध्वनि आयेगी। ईश्वर की प्रेरणा सुनाई देगी। आँख कहेगी, अमुक सिनेमा बहुत अच्छा है चलो देखें। मन प्रसन्न होगा।" परंतु आप कहेंगे, आंख तो मेरा सेवक है, मैं आंख का दास नहीं। मुझे उलटे मार्ग पर न ले जा।" इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न करो ऐसा करने से वह सम्पत्ति प्राप्त होगी जिसे दम कहते हैं।

दम के पश्चात् तीसरी सम्पत्ति है तितिक्षा—सहन करने की शक्ति। शोक हो या रोग, दुःख हो या क्लेश, संकट हो या आपत्ति, सब को सहन करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना। इस के लिये शरीर को शक्तिशाली [बनाना चाहिए। ऐसा बनाना चाहिये कि वह गर्मी सर्दी, आपत्ति विपत्ति सब का सामुख्य कर सके। मन की दशा ऐसी होनी चाहिये कि सुख हो या दुःख, जो लक्ष्य अपने समक्ष रक्खा है उसे प्राप्त किये बिना पीछे न हटना पड़े। शरीर के लिये चरक ने कहा है, "जिस के अन्दर तीनों दोष सम अवस्था में रहते हैं, दोनों प्रकार की अग्नि सम रहती है, जिस के अन्दर धातु और मल ठीक रूप से कार्य करते हैं और जिसका आत्मा इन्द्रिय और मन प्रसन्न हैं वह स्वस्थ है। दोष है, कफ, वात और पित्त, तीनों सम रहें तो मनुष्य ठीक रहता है। अग्नि दो प्रकार की है जठराग्नि और रक्ताग्नि, दोनों में से कोई भी बढ़ जाये या कम हो जाये तब रोग आते हैं। धातु हैं लोहा आदि। रक्त के अन्दर उन का परिमाण ठीक रहे तो कार्य चलता है, नहीं तो ठप्प होकर बैठ जाता है। यह है पहचान इस बात की, कि आप का शरीर तितिक्षा की दशा में है या नहीं।

तितिक्षा के पश्चात् चौथी सम्पत्ति का नाम है उपरति। इस का अर्थ है दुष्ट व्यक्तियों की संगत से बचना। दुष्ट को सुधारने का प्रयत्न करना अवश्य। यदि वह सुधर नहीं पाता तो उस से परे हट जाना, उसके संग को त्याग देना। संगत अच्छी हो तो अच्छे परिणाम निकलते हैं, अच्छी न हो तो बुरे परिणाम समक्ष आते हैं।

उपरति के पश्चात् पांचवी सम्पत्ति है श्रद्धा, जिस के विना कोई कार्य नहीं बनता। यदि तुम्हें पथ प्रदर्शक की आवश्यकता है तो पहले किसी व्यक्ति को अच्छी प्रकार जांच कर देख लो। पूछ ताछ करो उसके सम्बंध में, और जब ज्ञात हो जाये कि वह पथ प्रदर्शन करने के योग्य है, तब उस पर पूरे विश्वास के साथ श्रद्धा करके, जो कुछ वह

कहता है, उसे करते चले जाओ। श्रद्धा नहीं होगी तो ध्यान रक्खो, ठीक मार्ग दिखाने वाला भी तुम्हारे लिये कुछ नहीं कर पायेगा। श्री कृष्ण गीता में कहते हैं, "श्रद्धा से ज्ञान मिलता है, ज्ञान से शान्ति।" वेद भगवान् भी कहता है।

"श्रद्धा से अग्नि जलती है। श्रद्धा से हवि होमी जाती है। हम यह घोषणा करते हैं कि श्रद्धा ऐश्वर्य और सुख की चोटी पर रहती है।" ऋ० १०। १५१। १)

और श्रद्धा के पश्चात् छटी सम्पत्ति है समाधान—मन को बाहर की ओर से हटा कर अंदर की ओर एकाग्र कर देना। यह है षट् सम्पत्ति। परंतु इस के सम्बंध में अभी कुछ और बातें भी कहनी हैं। आज समय हो गया है समाप्त। अतः चौथे भाषण में कहूंगा।

ओ३म् शम

चौथा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनों !

ब्रह्म क्या है ? किस प्रकार इसको प्राप्त किया जाताहै ? किस प्रकार उस की गवेषणा की जाती है ? इस की बात करने से पूर्व जिज्ञासु में चार बातों का होना आवश्यक है। इन में से तीसरे गुण षट् सम्पत्ति की बात में आप को कह रहा था। षट् सम्पत्ति का अर्थ है छः प्रकार की सम्पत्ति। पहली सम्पत्ति है 'शम' दूसरी 'दम' तीसरी तितिक्षा, चौथी उपरति, पांचवी श्रद्धा और छटी समाधान। शम की बात तो पर्याप्त विस्तार से आप को बता चुका। तितिक्षा का अर्थ है सहन करने की शक्ति। शारीरिक और मानसिक रूप से प्रत्येक बातको सहन करना। सहन शक्ति समाप्त हो जाये तो कितना अनर्थ होता है यह मिश्र में देखिये। मिश्र ने स्वेज को अपने अधिकार में कर लिया। बरतानियां का स्वार्थ इसे सहन नहीं कर सका। अशांति की आग जल उठी। संसार की भाँति परिवारों में भी सहन शक्ति न होने के कारण आपत्ति आती है। आपत्ति से बचने का सीधा मार्ग यह है कि न केवल स्वयं मीठा बोलो, अपितु दूसरे कड़वा बोलें तो उसे भी सहन करो। न केवल स्वयं ठीक मार्ग पर चलो, अपितु दूसरे यदि उल्टे मार्ग पर भी चलें तो उन्हें सहन करो। नहीं करोगे तो पहले क्रोध जागेगा, फिर दुःख जाग उठेगा। इसी प्रकार उपरति की महिमा को मैंने बताया। उपरति का अर्थ है बुरी संगत का त्याग। संगत का कितना प्रभाव होता है, यह इस बात से देखिये कि यमुना नदी आप के समीप बहती है। उस का पानी आप के क्षेत्रों और उद्यानों में पहुंचता है। जो पानी आम के वृक्ष की जड़ में जाता है, वह मधु की भांति मीठा हो जाता है जो मिर्च के पौदे की जड़ में जाता है,वह इतना तीखा हो जाता

है कि उसे चखते ही लोग तड़प उठते हैं। यमुना का पानी तो एक है, संगत के कारण एक स्थान पर वह एक वस्तु बनता है, दूसरे स्थान पर दूसरी वस्तु। संगत के प्रभाव से पानी की यह दशा होती है, तो मनुष्य की क्यों न होगी, विद्वान् लोग कहते हैं मनुष्य अपनी संगत से पहचाना जाता है, मैं कहता हूं संगत मनुष्य को बनाती है। अतः सौ कार्य छोड़ कर भी अच्छे सत्संग में सम्मिलित होना चाहिए। सहस्त्र कष्ट होने पर भी बुरी संगत से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए। इसी प्रकार मैंने श्रद्धा के सम्बन्धमें बताया कि किस प्रकार वह मनुष्य का बेड़ा पार करती है। आज की सभ्यता ने सब से बड़ा पाप किया यह कि लोगों की श्रद्धा को समाप्त कर डाला। प्रत्येक बात में तर्क करने और युक्ति देने की रीति उत्पन्न कर दी। शास्त्रार्थ बहुत करते हैं हम परंतु किसा परिणाम पर नहीं पहुंच पाते। मैं यह नहीं कहता कि शास्त्रार्थ नहीं करने चाहिये। सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने के लिये बुद्धि से अवश्य कार्य लेना चाहिए, परंतु कहीं पहुंचना भी तो चाहिए। केवल शास्त्रार्थ के लिए शास्त्रार्थ करते रहना क्या हुआ? जो व्यक्ति मुक्ति लड़ाने के लिये युक्ति लड़ाते हैं वेद उन्हें जल्पी कहता है।

जल्पी क्या करते हैं, उसे समझने के लिए एक कहानी सुनिए। एक थे पति और पत्नी। नया विवाह हुआ। अलग रहने के लिए एक मकान उन्होंने किराये पर लिया। एक सेठ साहब का मकान था वह। नीचे के भाग में सेठ जी स्वयं रहते थे ऊपर के भाग में यह पति और पत्नी। अपने मकान को उन्होंने कुर्सियों और कौचों से सजाया। मेजों और बत्तियों से सजाया, परदों और कालीनों से सजाया। बहुत प्यार से रहते थे वे। एक दिन सेठ ने सुना कि वे दोनों झगड़ा कर रहे हैं। पत्नी भी ऊँचे-ऊँचे बोल रही थी, पति भी। युद्ध छिड़ गया प्रतीत होता था। सेठ जी पर्याप्त समय तक प्रतीक्षा करते रहे कि झगड़ा समाप्त हो जाएगा, परंतु वह समाप्त नहीं हुआ। आवाज के तोपखाने पूरे वेग से चल रहे

थे। तब सेठ साहब घबरा कर ऊपर गये बोले, "किस बात पर झगड़े जाते हो, तुम तो कभी झगड़ते नहीं थे। तुम्हारे जैसे अच्छे लोग मैंने देखे नहीं। फिर आज क्या हुआ।" पति ने कहा, "देखिए सेठ जी। आप ही इसको कुछ बुद्धि दीजिए। मैं कहता हूँ हम लड़के को वकील बनायेंगे। आनन्द से रुपया कमायेगा। समय पर कचहरी जायेगा, समय पर वापस आएगा। ये मूर्खा कहती है कि इसे डाक्टर बनायेंगे। अब बताइये डाक्टर का जीवन भी कोई जीवन है, दिन को शान्ति न रात्रि को विश्राम। डाक्टर बनाना तो उससे शत्रुता करना होगा।" सेठ ने श्री मती से पूछा तो वह बोली, "मेरे तो भाग्य खोटे थे जो इनके पल्ले पड़ी, इन्हें तो रुपये के अतिरिक्त कुछ सूझता ही नहीं और फिर डाक्टर क्या रुपया नहीं कमाते, रुपया कमाते हैं, दुःखियों की सेवा भी करते हैं। वकील का जीवन क्या है, हर समय झूँठ, हर समय चिन्ता। मैं तो लड़के को डाक्टर ही बनाऊंगी" सेठ साहब ने सोचते हुए कहा, ',इसके लिए इतना झगड़ा करने की क्या आवश्यकता है। लड़के से पूछ लो। यदि वह डाक्टर बनना चाहता है तो डाक्टर बना दो, वकील बनना चाहता है तो कानून पढ़ा दो। आओ ! मैं तुम्हारे लड़के को पत्र लिखता हूँ, जो कुछ वह कहे उसे तुम दोनों मान लेना।" दोनों ने एक साथ कहा, "परन्तु लड़का तो अभी पैदा नहीं हुआ।"

ऐसे लोगों को कहते हैं "जल्पी।" सूत न कपास घर में लठ्ठम लट्टा। ऐसे व्यक्तियों में श्रद्धा नहीं होती, श्रद्धा नहीं हो तो ज्ञान नहीं होता, ज्ञान न हो तो मन को एकाग्रता नहीं मिलती, मन एकाग्र न हो तो ईश्वर नहीं मिलता। जो लोग ब्रह्म को ढूँढ़ना चाहते हैं, उनके लिए आवश्यक है कि वे अपने अन्दर श्रद्धा उत्पन्न करें। ऐसे लोगों के लिए वेद कहता है, "उठो, जागो, और पहुँचो उनके पास जो जागे हुए हैं।" जागो इसलिए कहा कि संसार में कपट बहुत है। गुरु को ढूँढ़ना हो तो पूर्ण बुद्धिमत्ता से कार्य लेना चाहिए। उसकी अच्छी प्रकार जाँच करनी चाहिए। परंतु जब एक बार जाँच कर ली, जब एक बार बात समझ

में आ गई, तो उस पर श्रद्धा करनी चाहिए। आज के संसार में अद्भुत खेल हो रहा है। या तो ऐसी श्रद्धा है जिसमें बुद्धि नहीं या फिर ऐसी बुद्धि है जिसमें श्रद्धा नहीं। हर समय पहचान होती रहती है, निर्णय नहीं होता। ये दोनों विधियां अशुद्ध हैं। श्रद्धा से पहले पूरे होश से जाँच करनी चाहिए। जाँच के पश्चात् पूरे विश्वास के साथ श्रद्धा करनी चाहिये, तभी बेड़ा पार होता है नहीं तो नहीं।

और अन्त में छटी सम्पत्ति है "समाधान।" मन को बाहर की सभी बातों से हटा कर ध्यान में लगा देने की शक्ति। मन यदि बाहर की बातों में फंसा रहे, उन्हीं की बातें सोचता रहे, तो ध्यान कभी होता नहीं। केवल ज्ञान से एकाग्रता प्राप्त नहीं होती। केवल अभ्यास से भी नहीं होती। ज्ञान और अभ्यास जब दोनों मिलें तब मन एकाग्र होता है। बाहर की बातों से मन को हटा देना, एकाग्र कर देना, ध्यान में मग्न हो जाना, ऐसी बातें हैं जिन्हें आप प्रतिदिन सुनते हैं। परंतु आज मैं इनके सम्बन्ध में योग के कुछ ऐसे भेद बताऊँगा, जिन्हें योगी लोग वर्षों के तप और ध्यान से प्राप्त करते हैं। चित्त और मन दोनों जड़ हैं, स्वयं वे कोई कार्य नहीं करते, स्वयं उनमें कोई शक्ति नहीं। उनमें शक्ति आती है और वे काम करते हैं उस समय जब आत्मा का प्रतिबिम्ब उनके ऊपर पड़ता है। यह प्रतिबिम्ब न पड़े तो मन कोई कार्य नहीं करता। मन न करे तो इन्द्रियां भी नहीं करती। मैं यह चश्मा लगाता हूँ न, इसलिए कि इससे दूर तक दिखाई देता है। परंतु देखने का कार्य क्या यह चश्मा करता है? मैं आँखें बन्द कर लूँ तो चश्मा के वर्तमान रहने पर भी दिखाई नहीं देगा। परंतु वास्तव में यह आँख भी कुछ नहीं देखती। आपने देखा होगा कि कई लोगों की आँखें हैं फिर भी वे देख नहीं पाते, देखने का कार्य आँख नहीं करती अपितु वह तन्मात्रा करती है, जो आँख के पीछे रहती है। परंतु वास्तव में रूप तन्मात्रा भी नहीं देखती, देखता है मन—और मन भी नहीं देखता, उसे देखने की शक्ति देता है आत्मा। आत्मा अपनी शक्ति को

हटाले तो ये सब उपकरण किसी काम के नहीं रहते, कोई भी देख नहीं सकता। और जो दशा आँख की है वही नाक, कान जिह्वा और दूसरे उपकरणों की है। मन के कारण वे कार्य करते हैं और मन काम करता है आत्मा के कारण। देखने वाला और सूंघने वाला, सुनने वाला और स्वाद लेने वाला वास्तव में आत्मा है। वह मिट जाये तो यह सब कुछ लाश बन जाता है। पाँच कर्मेंद्रियां पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उनके पीछे खड़ी हुई पांच तन्मात्रायें, उनके पीछे खड़ी हुई बुद्धि, इसके पीछे खड़ा हुआ मन, और इसके पीछे खड़ा हुआ चित्त—ये सब जड़ हैं। केवल उनके पीछे खड़ा हुआ आत्मा ऐसी वस्तु है, जो प्रकृति नहीं। यह समझता है, "मैं ही चित्त हूँ, मैं ही मन हूँ।" यह कोरे भ्रम के अतिरिक्त और कुछ है नहीं। चित्त और मन का स्वभाव है देखी, सुनी और जानी बातों को याद रखना, उनके सम्बन्ध में सोचते रहना, और फिर उनमें ठहर जाना। योगियों की भाषा में इसे "परिख्या" (बार बार याद करना) "प्रवृति" (झुकाव या लगाव हो जाना) और "स्थिति" (ठहर जाना) कहते हैं। चित्त की वृत्तिया पाँच हैं 'क्षिप्त' अर्थात् रजो गुण और तमो-गुण में डूबे रहना, दूसरी निक्षिप्त अर्थात् सात्विक बातों और सात्विक भाव में डूबे रहना, तीसरी "मूढ़' अर्थात् सात्विक, तामसिक या राज-सिक किसी भाव का न रहना, घोर नींद में सो जाना, चौथी "एकाग्र" अर्थात् जो बात हम चाहते हैं, उसके अतिरिक्त मन को और किसी ओर न जाने देना, और पाँचवीं 'निरुद्ध' अर्थात् सभी विचारों इच्छाओं और भावनाओं का अन्त हो जाना, केवल अपने आप में खो जाना। पहली तीन दशायें योग में कुछ काम नहीं आती, काम आने की अपेक्षा उसमें रुकावट डालती हैं, दूसरी दोंनों दशायें योग में काम आती हैं। पहली दशा योग की अवस्था को उत्पन्न करती है। एकाग्र होकर मन या चित्त योग के लक्ष्य की ओर बढ़ता है। दूसरी दशा योग का लक्ष्य है। इसमें वह महान् ज्योति दिखाई देती है जिसे योगी देखने का प्रयत्न करता है।

इस अन्तिम दशा को उत्पन्न करने और उस ज्योति को देखने की

एक विधि यह है कि प्रातःजब सूर्य पूर्व के आकाश में उदय हो रहा हो तब अपने मकान की छत पर खड़े हो जाओ। सूर्य निकलने से कुछ समय पूर्व ही खड़े हो, जाओ और उपर उठते हुए सूर्य को देखो। एक क्षण के लिये सूर्य की आंख से आंख मिलाओ, फिर बन्द कर लो वंदकरलेने परभी चमकता हुआ सूर्य दिखाईदेता रहेगा। जबदिखाई देनाबन्द हो जाये तब फिर आंखें खोल दो, फिर सूर्य को एक क्षण देखो, फिर आंखें बन्द करके उस ज्योति को अपने अन्दर देखो, वार बार ऐसा करने से एक ओर शारीरिक लाभ होगा। सूर्य की किरणों के साथ आने वाली विद्युत आंखों के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होगी, दूसरी ओर मानसिक लाभ होगा ज्योति का वह आधार आप को मिल जायेगा जिस पर आपको ध्यान जमाना है, जिस पर अपने मन को एकाग्र करना है।

वेद ने ईश्वर को ज्योतियों की ज्योति कहा है। सूर्य की ज्योति को देखने से आप को उस महान ज्योति का थोड़ा सा संकेत मिल जायेगा। सांयकाल अथवा रात्रि के समय जब चहुं ओर अन्धेरा हो, तब ध्यान में उस ज्योति को देखो, जो सूर्य में दृष्टि गोचर हुई थीं बार बार देखोगे, बार बार उस ज्योति का ध्यान करोगे, तो वह ज्योति भृकुटि में टिक जायेगी, जब भी नेत्र बन्द करोंगे वह दिखाई देगी। जब ऐसी दशा उत्पन्न हो जाय, तब समझो कि मन को एकाग्र करने की पहली सीढ़ी चढ़ गये।

इसके पश्चात भृकुटि में दिखाई देने वाली, इस ज्योति को लगातार देखते रहो। योग की भाषा में इसे आन्तरिक त्राटक कहते है। त्राटक का अर्थं है, आंख झपके विना देखते रहना। अन्दर की ज्योति को निरन्तर देखते रहो। वहां अन्दर तो आंख झपकने का कोई प्रश्न ही नहीं। हां ध्यान की आंख को इधर उधर न होने दो, तब अन्दर से अदभुत ध्वनियां सुनाई देने लगेंगी। कभी ऐसा प्रतीत होगा जैसे नदी वही जाती हो, कभी ऐसे जैसे ऊपर से पानी गिर रहा हो, कभी ढोल की ध्वनि सुनाई देगी, कभी मृदङ्ग की, कभी वंशी बज उठेगी, कभी सितार

नाना प्रकार के बाजों की ध्वनियां सुनाई देने लगेंगीं-यही वे ध्वनियां हैं जिन्हें अनहद बाजें" कहते हैं एसे बाजे जिन्हें कोई बजाता नहीं। अभ्यास करने वाले जब भी चाहें, इन ध्वनियों को सुन सकते हैं, परन्तु ध्यान रक्खो ये सब ध्वनियां, और वह ज्योति जिसे तुम ध्यान में देखते हो, जड़ वस्तुएं हैं वे केवल इस लिये हैं कि आप के मन में आगे बढ़ने की श्रद्धा उत्पन्न हो। इन्हें देखते हुए और सुनते हुए आगे बढो उसी ज्योति में अधिक तीव्र बड़ीं ज्योति दिखाई देखी- कभी ऐसा प्रतीत होगा कि बहुत बड़ी अग्नि जल उठी है, कभी ऐसा कि कितने ही सूर्य चमक उठे हैं कभी ऐसे कितने ही जुगनु (पटबीजना) एक साथ जगमगा उठे हैं-ऐसे कई खेल दिखाई देंगे परन्तु ये सब की सब वस्तुएं भी जड़ हैं, इनको देख कर रुको मत, आगे बढ़ो-उसी ज्योति में जो तुम्हें दिखाई देती है, तब एक विशेष प्रकार की गन्ध आन लगेगी। ऐसी गंध जो बाहर के संसार में कहीं पर नहीं- तब ऐसा प्रतीत होगा जैसे किसी ने तुम्हारे सिर पर आशी-र्वादका हाथ रख दिया है। हमे आशीर्वाद के मिलते ही सब कुछ गुम हो जायेगा। सुन्न हो जायेगा सब कुछ। यह दशा जब उत्पन्न हो जाये तब समझो कि दूसरी सीढ़ी चढ़ागये हो परंतु पहली होया दूसरी-सीढ़ी तो लक्ष्य नही अभी और आगे बढ़े, तब अंहकार दिखाई देखा, यह तीसरी सीढ़ी हैंतब आत्मा अलग दिखाई देगा शरीर अलग. ऐसा प्रतीतहोगा कि आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ जड़ है। अहंकार, बुद्धि, मन सब जड़ है यह चौथी सीढ़ी है, तब और आगे बढ़ो एक और सम अवस्था में निर्गुण प्रकृति दृष्टि गोचर होगी, इस में रंग नहीं, रूप नहीं, गंध नहीं-कुछ भी नहीं, दूसरी ओर आत्मा दिखाई देगा चमकता हुआ, उस आत्मा का सहारा लेकर आगे बढ़ो, पांचवी सीढ़ी की ओर चलो परमात्मा की ओर-क्योंकि परमात्मा का दर्शन केवल आत्मा ही कर सकता है। मन बुद्धि, अंहकार यह शरीर सब जड़ हैं, जड़ को परमात्मा दिखाई नहीं देता, आत्मा को दिखाई देता है। क्या है वह परमात्मा यह बताने की आवश्यकता नहीं। कोई इसका वर्णन नहीं कर सकता

केवल इतना कहना चाहिये कि वह अनंत है, उसके अंदर अनंत आनंद है। उस को देखने के पश्चात और कुछ देखना शेष नहीं रहता उसको पाने के पश्चात कुछ पाना शेष नहीं रहता।

यह है षट सम्पत्ति। विधि मैंने बता दी जिस के भाग्य में है व.. अभ्यास करे। लगातार अभ्यास करने से सफलता मिलेगी अवश्य।

जैसा कि मैंने पहले कहा महर्षि दयानन्द और जगद्गुरू शंकराचार्य दोनों ने ब्रह्म को पाने के लिए चार साधनों को आवश्यक कहा है। 'षट् सम्पत्ति' उनमें तीसरा साधन है। चौथे साधन की बात कहने से पूर्व, एक बात आसन के सम्बन्ध में सुनिये।

मन को एकाग्र करने में आसन बहुत सहायता करता है। योगी लोग कहते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ३ घण्टे ३६ मिनट, बिना हिले जुले, बिना थके और बिना कष्ट के एक ही आसन में बैठ सके तो उसका मन स्वयमेव एकाग्र हो जाता है। आरम्भ में तो तीन घण्टे और ३६ मिनट का आसन लगाया नहीं जा सकता, इस दशा को प्राप्त करने की विधि यह है कि पहले आप जितनी देर बैठ सकते हैं उतनी ही देर बैठिये, यदि आप आध घण्टा बैठ सकते हैं तो आध घण्टा बैठिये, तब इस समय को पांच-पांच मिनट करके बढ़ाते जाइये। एक सप्ताह ३५ मिनट, दूसरे सप्ताह ४० मिनट, फ़िर ४५ मिनट, इसी प्रकार धीरे धीरे बढ़ाते जाइये, अन्त में तीन घन्टे और ३६ मिनट की दशा भी उत्पन्न हो जावेगी। फिर एक और बात भी याद रखिये, कि जहां आप एक बार ध्यान लगाते हैं, चाहे भृकुटि में या हृदय में, प्रतिदित वहीं लगाते रहें, ध्यान लगाने के स्थान को न बदलें।

अब सुनिये चौथे साधन की बात, जिसे महर्षि दयानन्द और शंकराचार्य ब्रह्म प्राप्ति के लिये आवश्यक समझते हैं। इस साधन का नाम है 'मुमुक्षत्व' मुक्त होने की प्रबल इच्छा। इस इच्छा का अर्थ यह है कि संसार के लोगों से हटाकर अपने आप को ईश्वर की ओर लगा दो,

ईश्वर का दर्शन पाने के लिये, उसे प्राप्त करने के लिए इस प्रकार व्याकुल हो जाओ जैसे पानी से बाहर आई हुई मछली व्याकुल हो जाती है।

इस दशा के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में जो कुछ लिखा है वह सुनिये, महर्षि कहते हैं, "जैसे क्षुधातृषातुर को सिवाय अन्न जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता, वैसे बिना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना।"

नवयुवक पति जैसे पत्नी के लिये, पत्नी जैसे पति के लिये व्याकुल होती है, ऐसी व्याकुलता ईश्वर को पाने के लिए उत्पन्न हो जाये, तो उसे मुक्त होने की इच्छा कहते हैं, उसे मुमुक्षत्व कहते हैं।

जगद्गुरू शंकराचार्य कहते हैं तीन बातें बहुत कठिनता से प्राप्त होती हैं। मनुष्यत्व, मुमुक्षत्व और साधु की संगत। ममुष्य बनना, मनुष्य बनने के पश्चात् मुक्त होने की इच्छा और मुक्त होने की इच्छा के पश्चात् ऐसे महापुरुष की संगत जो इस इच्छा को पूर्ण करने का मार्ग दिखा सकता हो।

कहते हैं कि मनुष्य शरीर ८४लाख शरीरोंमें घूमनेके पश्चात् मिलता है,परन्तु यह ८४ लाख तो केवल कहने की बात है। मनुष्य शरीर के अतिरिक्त दूसरे शरीर चौरासी लाख से कई गुणा अधिक हैं। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं, इस पर कई करोड़ प्रकार के शरीर हैं। यह पृथ्वी है सौर मण्डल का एक छोटा सा भाग। इतना छोटा कि इस के एक और ग्रह वृहस्पति में १३५० पृथ्वियां समा सकती हैं। इस विशाल सौर मंडल में एक छोटी सी गेन्द की भांति यह पृथ्वी उड़ी जाती है, जिस पर आज ढाई अरब मनुष्य रहते हैं। परन्तु यह सौर मण्डल जिसे हम विशाल कहते हैं; उस महा सूर्य मण्डल में धूल के एक कण के समान है, जिसका एक भाग हम 'आकाश गंगा' के रूप में रात्रि के समय देखते हैं। इस मह सूर्य मण्डल में और दूसरे महा मण्डलों में जिन्हें विज्ञान के विद्वानों ने अभी तक बड़ी बड़ी दूरबीनों से देखा, इतने सौर मण्डल है

कि यदि पृथ्वी पर रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को तीन तीन सौर मण्डल भी दे दिये जायें, तो करोड़ों सौर मण्डल फिर भी बच जायेंगे। प्रत्येक बार जब कोई नई दूरबीन बनती है, तब कितने ही सौर मण्डल और नये महामण्डल दृष्टिगोचर होते हैं। इन अनन्त सौर मण्डलों में केवल ८४ लाख प्रकार के ही जीव नहीं, उनकी संख्या बहुत अधिक है। साधु और सन्त जब ८४ लाख कहते है, तो उनका तात्पर्य होता है बहुत अधिक। इन अनगणित शरीरों में से गुजरने के पश्चात् आत्मा को मनुष्य का शरीर मिलता है। इसी लिए शंकराचार्य ने कहा कि मनुष्य का जन्म मिलना बहुत कठिन है। यह शरीर मिल भी जायें तो जन्म और मरण के बन्धन से मुक्ति पाने की इच्छा का उत्पन्न होना और भी कठिन है और यह इच्छा उत्पन्न भी हो जाये तो ऐसे साधु सन्तों और महात्माओं का मिलना बहुत कठिन है, जो मुक्ति का मार्ग दिखा सकते हैं, उस पर चलने में सहायता दे सकते हैं। ये तीनों बातें हों उस के पश्चात् वे चारों साधन पूरे किए जायें, जिन की मैंने पिछले भाषणों में चर्चा की थी, तब ब्रह्म की जिज्ञासा का आरम्भ करने का अधिकार मिलता है। तब यह पूछने का अधिकार मिलता है, ब्रह्म क्या है ?उसका स्वभाव क्या है ? रंग रूप क्या है ? कहाँ रहता है वह क्या करता ? उसके समीप पहुंचने का मार्ग क्या है? इन सभी बातों का उत्तर महर्षि दयानन्द और जगद्गरू शंकराचार्य ने जो कुछ दिया है कल से हम उसका वर्णन करेंगे, कल से हम वेदान्त के विशाल वन में प्रविष्ट होंगे।

ओ३म् शुभम्

पांचवां दिन

प्यारी माताओं तथा सज्जनों !

कल मैंने कहा था कि आपको वेदांत के विशाल वन में ले चलूंगा। उसमें भ्रमण कराऊंगा, परंतु ऐसा करने से पूर्व दो प्रश्नों के उत्तर देना चाहता हूं जो आप में से कुछ सज्जनों ने मेरे पास भेजे हैं। पहले प्रश्न को पूछने वाले सज्जन कहते हैं कि कई दिन से हम आपकी कथा सुन रहे हैं, उसमें आनंद भी लेते हैं, जी लगता है उसमें, परंतु प्रतिदिन आप आत्मा की बात करते हैं उसका क्या लाभ है ? संसार को और विशेषकर भारत को आज आवश्यकता है भौतिक उन्नति की, उद्योग धंधों और कृषि के क्षेत्र में आगे बढ़ने की, धन की, व्यापार की बात सुनाने के स्थान पर आप जो आत्मा की कहानी सुनाते फिरते हैं, उससे क्या होगा ? पता नहीं कि आत्मा है भी या नहीं, यदि हो भी तो उसके मिल जाने से क्या लाभ होगा ?

यह है प्रश्न—इसे देखकर मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। कथा को आरंम्भ करते समय मैंने आपको महात्मा विदुर और धृतराष्ट्र की बात सुनाई थी, ठीक ऐसी ही बात है यह। विदुर ने कहा था, "समस्त संसार आज लोभ, भय और क्रोध से पागल हो गया है।" पाँच सहस्र वर्ष पूर्व यदि यह बात ठीक थी तो आज भी सत्य है। पांच सहस्र वर्ष पूर्व यदि संसार दुःख से पागल था तो आज उससे दुःखी, अधिक पागल है। भौतिक उन्नति हुई है अवश्य, विज्ञान आगे बढ़ा है, औद्योगिक और कृषि उत्पत्ति बढ़ी है, परन्तु सुख भी है किसी को ? किसी धनी से धनी और निर्धन से निर्धन व्यक्ति से जाकर पूछो, क्या वह सुखी है ? योरूप और अमेरिका तो उद्योग और कृषि में हम से बहुत आगे हैं, विज्ञान में आगे हैं, सम्पत्ति और व्यापार में आगे हैं। उनसे

जाकर पूछो, क्या वे सुखी हैं ? क्या उनके मन में आनन्द है, शान्ति है। यदि है तो फिर वे लड़े क्यों मरते हैं, अन्धांधुंध भागे क्यों जाते हैं ? भय क्रोध और लोभ से पागल क्यों हो गए हैं ? नहीं, मेरी माताओ, मेरी बेटियो, मेरे भाइयों सुखी कोई नहीं, और सुखी न होने का कारण है केवल यह कि संसार आत्मा को भूल गया है ? संसार में आनन्द कहां है ? इस प्रश्न की गम्भीरता में जब जाओगे तो पता लगेगा कि आत्मा को खोजे बिना आत्मा को पाये बिना सच्चा आनन्द कभी नहीं मिलता।

अथर्ववेद काण्ड दस, सूक्त दो का तैंतीसवाँ मन्त्र कहता है कि—

"उसकी आँखें नहीं जाती, उसके प्राण नहीं जाते, जो आत्मा के रहनेके स्थान को जानता है। ब्रह्मपुरी में रहने वाले आत्मा को जो जान लेता है, वह जरावस्था तक आंखों वाला, प्राण, नाक और कान वाला, वाणी वाला इन्द्रियों का स्वामी बना रहता है।"

इस मन्त्र में प्राण का अर्थ है स्वास्थ्य। आंख, नाक, कान, वाणी और इन्द्रियों के रहने का अर्थ है कि ये सब ठीक और स्वस्थ दशा मे रहती हैं और जरा का अर्थ क्या है ? क्या आप जानते हैं ? साधारण-तया जरा शब्द का अर्थ समझा जाता है बुढ़ापा। परन्तु सुनो ! जरा बुढ़ापे को नहीं कहते, बुढ़ापे से पश्चात् की दशा को कहते हैं। आयुर्वेद के अनुसार उत्पन्न होने से आठ वर्ष तक की आयु को बचपन कहते हैं। आठ से सोलह वर्ष की आयु को कुमारावस्था कहते हैं। सोलह से सत्तर वर्ष की आयु को यौवन कहते हैं। सत्तर से सौ वर्ष की अवस्था को बुढ़ापा कहते हैं और सौ से एकसौ बीस वर्ष तक की आयु को जरा कहते हैं। आज यह बात कुछ व्यक्तियों को बहुत आश्चर्य जनक प्रतीत होगी, परन्तु महाभारत के युद्ध में जो लोग लड़ रहे थे, उनमें कितने ही ऐसे थे, जिनकी आयु डेढ़सौ, दो सौ वर्ष थी। कृष्ण और अर्जुन दोनों एक सौ बीस वर्ष के थे। भीष्म तो अर्जुन के पितामाह थे। द्रोण की आयु चार सौ वर्ष बताई जाती है और वे इस प्रकार लड़ रहे थे जिस प्रकार युवक लड़ते हैं—यह है आत्मा की जानने का एक लाभ। आत्मा को

जानने वाले सौ वर्ष के पश्चात् भी पूर्ण स्वस्थ, प्राण, आँख, कान, और वाणी वाला बना रहता है। परन्तु यह तो केवल एक लाभ है। बहुत साधारण सा लाभ। परन्तु तुम्हारी समस्त उन्नति से अधिक जिसे तुम औद्योगिक, कृषिक, व्यापारिक और आर्थिक उन्नत्ति कहते हो।

अब एक और लाभ सुनो। जब आत्मा जाग जाता है, जब आत्मा प्राप्त हो जाता है, तब तक ऐसी शक्ति मनुष्य से आती है जैसी शक्ति और किसी भी उपाय से नहीं मिलती।

बुद्ध घूम रहे थे भारत में। भ्रमण करते हुए मगध में पहुँचे तो एक नगरी के बाहर डेरा डाल कर बैठ गये। लोग उनके दर्शनों को आये। बुद्ध ने पूछा "क्या हाल है ?" सब ने कहा, "बहुत दुःखी हैं हम।" किसी ने कहा, "मेरा लड़का मारा गया।" किसी ने कहा "पति मारा गया।" किसी ने कहा, "भाई मारा गया।" बुद्ध ने आश्चर्य से पूछा क्या हो गया है तुम सबको क्या कोई युद्ध यहां पर हुआ। क्या राजा ने अत्याचार आरम्भ कर दिया ? लोगों ने कहा, नहीं महाराज ! राजा अच्छे हैं, युद्ध भी नहीं हुआ। परन्तु यहां एक डाकू रहता है अंगुलीमार। वह प्रतिदिन एक नए व्यक्ति को मारकर उसकी अंगुली काट लेता है। जिस देवी की वह पूजा करता है, वह उसे एक हजार अंगुलियों की माला पहनाना चाहता है। उसे किसी ने कह दिया है कि ऐसी माला पहनाने से बड़ी सिद्धि मिल जायेगी। बुद्ध ने पूछा, "कहाँ रहता है वह ?" लोगों ने बताया, "नगर के दूसरी ओर विशाल बन में" बुद्ध बोले "मैं उसके पास जाऊंगा। लोगों ने अशान्त होकर कहा, "उनके पास मत जाइए महाराज।" परन्तु बुद्ध मानने वाले नहीं थे, उठे चल पड़े। लोगों ने कहा "उसे राजा के सिपाही भी नहीं हरा सके, आप बिना हथियार के क्या करेंगे।" बुद्ध बोले मेरे पास ऐसा हथियार है जिसके सम्मुख और कोई हथियार नहीं चलता।' और वे नगर को पार करके जंगल में पहुँचे। सुनसान और वीरान वन था वह अत्यन्त भयानक। कहीं कोई व्यक्ति नहीं कोई पशु नहीं। बुद्ध चलते गये। पर्याप्त आगे जाकर एक बूढ़ी स्त्री मिली। बुद्ध ने पूछा, 'मां ! क्या

तुम जानती हो कि अंगुलीमार डाकू इस वन में कहां रहता है?' बूढ़ी स्त्री ने कहा, "जानती हूँ पुत्र! परन्तु आगे मत जा, वापस चला जा यहां से। अंगुलीमार मनुष्य नहीं राक्षस है, वह तुम्हारा वध किए बिना मानेगा नहीं। बुद्ध हंसते हुए बोले ऐसी क्या बात है मां! क्यों वह मेरी हत्या करेगा? बूढ़ी स्त्री ने कहा, "तू जानता नहीं है बेटा, एक सहस्र अंगुलिया वह एकत्रित करना चाहता था। आज अन्तिम रात्रि है। आज उसे देवी की पूजा करनी है, उसे माला पहनानी है आर माला में एक अंगुली अभी कम है, आज प्रातःकाल से वह किसी व्यक्ति को खोजता फिरता है। मैं उसकी मां हूँ। मने पूछा—यदि रात्रि तक कोई व्यक्ति न मिला तो क्या करेगा तू। वह बोला सायंकाल तक यदि कोई व्यक्ति न मिला तो मैं तुझी को मार डालूंगा, तेरी अंगुली काट कर माला में पिरो दूँगा। मैं ऐसी डरी कि सांयकाल होने से पूर्व ही घर छोड़ कर भाग उठी। अपनी मां को नहीं छोड़ता वह तो तुझे कैसे छोड़ेगा। वापस चला जा यहां से। वह पहले पागल था आज पूर्ण पागल हो गया है।' बुद्ध बोले—, "मुझे मरने का डर नहीं है, मैं उसे मिलूँगा अवश्य। तुम बताओ, वह रहता कहां है? बूढ़ी स्त्री ने कहा, "वृक्षों के काले झुरमुट के उस पार उसका मकान है। उसमें मिलेगा वह परन्तु मैं अब भी कहती हूं न जा। बुद्ध हंसते हुए आगे बढ़े। झुरमुट के उस पार चले गए, सामने मकान दृष्टिगोचर हुआ। उसके समीप जाकर बोले, 'कोई है?' अन्दर से आवाज आई। थोड़ी देर में अंगुलीमार बाहर आया, हाथ में तीक्ष्ण तलवार लिये। द्वार के बाहर आगे बोला, 'कौन हो तुम?' बुद्ध बोले 'तुम्हीं क्या अंगुलीमार हो? डाकू ने चिल्लाकर कहा, 'हां तुम्हारी मृत्यु तुम्हें यहां ले आई है, मैं तुम्हारी गर्दन काटूंगा।' बुद्ध हँसते हुए बोले, मैं तो गर्दन कटवाने ही आया हूँ, इसलिए आया हूँ कि तुम्हारी पूजा पूरी हो जाय, आगे बढ़ो, काटो यह गर्दन।' और उन्होंने गर्दन झुका दी। अंगुलीमार प्रसन्नता से चिल्लाकर आगे बढ़ा तलवार उठाकर—परन्तु यह क्या तलवार वाला हाथ जहां का तहाँ रुक गया। पांव सुन्न हो गये। उससे एक पग

भी आगे नहीं बढ़ा गया। कांपते हुए उसने कहा—यह, यह क्या हो गया मुझ को ? कौन हो तुम ? बुद्ध बोले, मैं हूँ गौतम। डाकू ने तलवार फेंक दी, आश्चर्य से बोला, आप ही क्या गौतम बुद्ध हो। आप ही क्या मरने के लिए आयें हो ? बुद्ध ने कहा, हाँ मैं गौतम हूँ, मैं मरने के लिए आया हूँ। अंगुलीमार कांपती हुई, आंसू भरी आवाज मे बोला, मुझे क्षमा कर दो गौतम। मैंने बहुत पाप किए हैं, मेरे पापों का कोई प्रायश्चित नहीं। गौतम आगे बढ़े, उसके माथे को छूकर बोले, घबराओ नहीं, मैंने तुम्हारे पाप नष्ट कर दिये, मैंने तुम्हारे मन को बदल दिया। यही अँगुलीमार बाद में भिक्षु बना। लंका में जाकर बौद्ध धर्म का प्रचार ऊसने ही किया।

यह है आत्मा की शक्ति, जिसके सामने और कोई शक्ति नहीं चलती।

मथुरा में बाल ब्रह्मचारी तेज से भरपूर स्वामी दयानन्द पाखण्ड के दुर्गों को गिराए देते थे। प्रतिदिन शास्त्रार्थ होते थे, प्रतिदिन उनके विरोधी हारते थे। दाँत पीसते थे वे कि यह साधु कल मथुरा से ही पढ़ कर गया था, आज हमारे ही पोल खोले देता है, हमारी आजीविका छीने लेता है, शास्त्रार्थ मे हम से हारता नहीं, इसे हारने के लिये कोई और उपाय करना चाहिये। उपाय सोचा गया। एक वेश्या के पास गए वे लोग। सुन्दरी थी वह। उससे बोले, हम तुझे बहुत से आभूषण देंगे। अमुक उद्यान सें दयानन्द रहता है। तू उसके पास जा। उसके पास जाकर कोलाहल मचा देना कि इसने मुझे छेड़ा है। हम निकट ही छिपे रहेंगे, बाहर निकल कर डन्डों ने उसे अधमरा कर देंगे। उसे मथुरा से बाहर निकाल देगें। बाहर निकल जानें पर तुम्हें और रुपया देगे। वैश्या ने यह बात मान ली। अपने आप को खूब सजाकर, कितनें ही आभूषण धारण करके वह वहीं गई, जहीं ब्रह्मचर्य और आत्मा के तेज से चमकते हुए स्वामी दयानन्द बैठे थे। एक वृक्ष के नीचे आखें मूंद कर, ध्यान म मग्न। वैश्या ने उसको दूर से देखा तो ऐसा

प्रतीत हुआ जैसे आधे पाप धुल गए हैं, निकट गई तो शेष आधे भी धुल गए और निकट जाने पर अन्तः करण भी पवित्र हो गया। एक चीख उसके मुख से निकल गई। वाल ब्रह्मचारी ने आंखें खोल दी, बोले मां ! तुम कौन हो ? मां का शब्द सुनते ही उसका हृदय भर आया, आंखें डवडबा आई। अश्रु भरी आंखों से उसकी ओर देखकर अपने आभूषण उतारने लगी। महर्षि ने फिर कहा, माँ ! तुम कौन हो ? अपने बेटे से क्या लेने आई हो तुम ? स्त्री ने सिसकते हुए कहा क्षमा मांगने आई हूँ महात्मा। इन आभूषणों ने मुझे अन्धा कर दिया था, इनकी मुझे आवश्यकता नहीं। और रोते हुए उसने सारी कथा महर्षि को सुना दी। महर्षि ने गम्भीरता से कहा, मां ! ईश्वर ने जो श्रेष्ठ बुद्धि इस समय दी हैं. वह सदा बनी रहे, यही मेरा आशीर्वाद है।

इस स्त्री के पाप भरे मन को बदला तो किस वस्तु ने ? महर्षि की पवित्र आत्मा की शक्ति ने। आत्मा की शक्ति जिन के अन्दर जाग उठती है, उसके समक्ष एटम वम्बों और हाइड्रोजन बम्बों की शक्ति भी हार जाती है।

यह है आत्मा को खोज का लाभ—इस के बिना सच्ची शक्ति कभी नहीं मिलती, इस के विना सच्चा सुख कभी नहीं मिलता।

दूसरा प्रश्न एक बेटी ने पूछा यह कि आर्य समाज के सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर और आत्मा का सम्बन्ध पिता और पुत्र का है, स्वामी और सेवक का है, फिर मैंने अपने एक भाषण में उसे पति और पत्नी के सम्बन्ध से उपमा दी तो क्यों ? उसे प्रेमी और प्रीतम का सम्बंध दिया तो किस ने। इसका अभी उत्तर देने की आवश्यकता नहीं। वास्तविक बात ईश्वर से परम अनुराग है। भिन्न २ स्थानों पर भिन्न २ दशाओं में यह भिन्न २ रूप धारण करता है। परंतु पिता और पुत्र का प्रेम कहें, स्वामी और सेवक का कहें, मित्र मित्र का कहें, प्रेमी और प्रीतम का—इस प्रेम को कभी हम प्रेम कहते हैं, कभी भक्ति कहते हैं, कभी श्रद्धा कभी ममता, कभी अनुराग-इन में से कोई भी बात आर्य समाज के सिद्धांत के विरूद्ध नहीं।

अब वास्तविक बात सुनिये। वेदान्त के उस विशाल बन में चलिये, जिस की बात मैंने कल कही थी। महर्षि दयानन्द ने वेद का झण्डा ऊंचा किया--जगद्गुरू शंकराचार्य ने वेदान्त का।

वेद का अर्थ है ऋग् यजु, साम अथर्व। परंतु वेदान्त का अर्थ क्या है। इसको देखिये तो ज्ञात होगा कि वेद का अन्त अर्थात् उस का अन्तिम भाग ही वेदान्त है। जगद् गुरु शंकराचार्य ने जब अपने चारों ओर फैले घोर नास्तिकता को देखा तो वेद के अन्तिम भाग का आश्रय लेकर उसे दूर करने का प्रयत्न किया। यह अन्तिम भाग क्या है ? क्या आप जानते हैं ?

वेद का अन्तिम भाग है उस आध्यात्मिक ज्ञान का पहला भाग जिसे हम उपनिषद् कहते। उपनिषदों का नाम तो आप ने बहुत बार सुना है। ईश, केन, कठ, प्रश्न मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरीय, तैतरीय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक आदि········इन में सब से पहला उपनिषद् कौन सा है ? ईशोपनिषद्। और यह ईश उपनिषद् वही है जो यजुर्वेद का अन्तिम अध्याय है, सब से अन्त में आता है—वेद का अन्तिम भाग जिस ज्ञान का प्रारम्भ करता है—उस का नाम जगद्गुरू शंकराचार्य ने रक्खा वेदान्त। वेदान्त का अर्थ यह भी हो सकता है—वेद का अन्तिम सिद्धाँत और वेदान्त का यह भी हो सकता है कि वेद का अन्तिम भाग, और वेदान्त का अर्थ यह भी हो सकता है कि वेद अर्थात् ज्ञान की सीमा ज्ञान का अन्त।

श्री शंकर ने वेदान्त का आधार प्रस्थान त्रैयी को माना है—तीन प्रकार के ग्रंथों को। इन में पहली प्रकार के ग्रंथ हैं उपनिषद्, फिर गीता, तब ब्रह्म सूत्र। जिस प्रकार आर्य समाज वेद को सब से ऊंचा मानता है उसी प्रकार वेदाँती उपनिषदों को सब से ऊंचा मानते हैं, परंतु उपनिषद् वेद के विरूद्ध तो नहीं हैं, वे या तो वेद का भाग है अथवा उसके आध्यात्मिक ज्ञान की व्याख्या। वेद में प्रत्येक प्रकार का

ज्ञान है और सभी विद्यायें । उपनिषदों में केवल आध्यात्मिक ज्ञान है--
केवल ब्रह्म विद्या ।

इस ब्रह्म विद्या का महत्व क्या है यह इस बात से समझिये, कि केवल
भारत वर्ष के ऋषियों, महात्माओं को ही नहीं, दूसरे देशों और दूसरे
धर्मों के लोगों को भी इस ने मोहित किया है ।

आज से तीन सौ वर्ष पूर्व औरंगजेब के भाई दारा शिकोह ने जब
उपनिषदों का कुछ भाग सुना तो ऐसा मोहित हुआ कि छः मास तक
प्रतिदिन उपनिषदों की कथा सुनता रहा । उपनिषदों पर उसे ऐसी
श्रद्धा हुई कि काशी से ब्राह्मणों को बुलाकर उस ने उनका फारसी
भाषा में अनुवाद किया । केवल दाराशिकोह पर ही नहीं उसकी बहिन
जेबुन्ननिशा को भी उपनिषदों से श्रद्धा हुई । उस ने फारसी के उपनिषद्
पढ़े । उन के ज्ञान से उस के मन में जो शान्ति जाग उठी और जो
जागृति उत्पन्न हुई उस के सम्बंध में एक कथा प्रसिद्ध है । उस समय
आज कल की भांति शीशे नहीं होते थे । आज कल तो स्त्रियों के
अतिरिक्त कालिजों के नवयुवक भी जेब में कंघी और शीशा लिये फिरते
हैं । उस समय शीशे केवल धनिकों और राजाओं के पास होते थे ।
औरंगजेब के पास भी चीन का एक व्यापारी एक शीशा लाया ।
औरंगजेब ने वह शीशा जेबुन्ननिशा को दे दिया । जेबुन्ननिशा को
शीशा बहुत प्रिय लगा । उस ने अपने कमरे में सम्भाल कर रख दिया ।
एक दिन वह स्नान के पश्चात् धूप में बैठी थी । शीशा देखने का
विचार आया तो लौण्डी से बोली, "अंदर जा कर चीन का वह शीशा
ले आओ लौण्डी गई, शीशे को उठा कर ला रही थी कि अपना मुख
उस में देखने लगी । ध्यान था शीशे की ओर । ठोकर लगी, गिर गई,
शीशा टूट गया और डर के मारे थर थर कांपने लगी । इतनी अमूल्य
वस्तु, उसने असावधानी से तोड़ दी, क्या जाने अब जेबुन्ननिशा क्या
दण्ड देगी । इसी भय से उस का हृदय कांप उठा । जहाँ खड़ी थी वही
खड़ी रही, भय मानो उसे व्याकुल किए देता था । जेबुन्ननिशा ने एक
और लौण्डी को भेजा कि जा कर देख कि जिस लौण्डी को शीशा लेने

के लिए भेजा था वह अभी तक आई क्यों नहीं । लौण्डी ने वापस आकर डरते हुए कहा, "राजकुमारी ! वह शीशा तो टूट गया । राजकुमारी को उपनिषद का ज्ञान याद आ गया । हंसते हुए बोली:—

अज़ खता आयनाये चीनी शकस्त ।
खूब शुद कि सामाने खुद बीनी शकस्त ॥

यह प्रभाव ! यह शान्ति देने वाला प्रभाव—जेबुन्नत्निशा पर । और आज से १५० वर्ष पूर्व इस फारसी अनुवाद से एक फ्रेंच विद्वान् ने उपनिषदों को लैटिन (Latin) भाषा में अनुवाद किया । लैटिन से उनका जर्मनी में हुआ तब योरुप की अन्य अनेक भाषाओं में । शौपनहार ने जब इन्हें पढ़ा तो पुकार कर कहा, ',मुझे न केवल जीने का आश्रय मिल गया है, अपितु मरने का आश्रय भी मिल गया है ।

यह है उपनिषदों और उनके ब्रह्म ज्ञान का महत्व ।

परंतु उपनिषदों में क्या है ? उपनिषदों के ज्ञान को जिन मुसलमान संतों ने प्राप्त किया उन्होंने अपने यहां एक नवीन मत आरम्भ किया, जिसे सूफी मत कहते हैं । वेदान्त का फारसी अनुवाद "तसूफ' है वेदान्त का मोती । इन सूफियों ने तीन शब्दों में बताया कि जिस ज्ञान की वे बातें करते हैं उसमें क्या है । ये तीन शब्द हैं—चे—चूँ—चिरा । इनका अर्थ है क्या ? क्यों ? और कैसे ? उपनिषद बताते हैं कि मैं कौन हूँ ? कहां से आया हूँ ? कैसे आया हूँ ? क्यों आया हूँ ? कहाँ जाऊंगा ?

परन्तु आज इन प्रश्नों के सम्बंध में विचार करने का अवकाश किस को है ? आज तो यह दशा है कि:—

भूल से चीनी शीशा टूट गया तो अच्छा हुआ, विलासता का सामान समाप्त हो गया ।

अनुवादक

आप अपने आपको ढूंढ़ता हूं मैं
मुझ को ही मेरा पता नहीं मिलता॥

और इसलिए नहीं मिलता कि ढूंढ़ने का या तो प्रयत्न नहीं होता, अथवा उल्टे मार्ग से होता है। अपने आपको ढूँढ़ने का प्रयत्न और प्रयत्न का ठीक मार्ग ही उपनिषदों का विषय है। याज्ञवल्क्य जब संन्यास लेने लगे तो लोगों ने पूछा, "किस लिए आप संन्यास लेते हैं?" याज्ञ-वल्क्य बोले, "एक तो इसलिए कि एक विशेष आयु के पश्चात् संन्यास आश्रम में चले जाना आर्य मर्यादा है, दूसरे इसलिए कि आत्मा के दर्शन कर सकूँ क्योंकि आत्मा के दर्शन किए बिना जो मर जाता है, उसका महानाश होता है। और यह बात केवल याज्ञवल्क्य ऋषि ने ही नहीं कही, दूसरे ऋषि और महात्माओं ने भी कही है। धन उपार्जन करना चाहते हो करो, भवन निर्माण करना चाहते हो अवश्य करो। सन्तान, शक्ति, शासन जिसकी इच्छा है उसे प्राप्त करो, यत्न करने से सब कुछ मिलता है। परन्तु सुनो। सुनो, सुनो! ये सब वस्तुएँ नष्ट होने वाली हैं, यदि तुमने आत्मा को नहीं जाना तो सर्वनाश हो जायेगा।

महर्षि प्रजापति ने जब यह बात कही—जब घोषणा की कि आत्मा को जाने बिना सर्वनाश होता है तब देवताओं के नेता इन्द्र और राक्षसों के नेता विरोचन दोनों उनके पास गये, बोले, "हम आत्मा को जानना चाहते हैं। प्रजापति ने कहा, "२५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करके मेरे आश्रम में रहो उसके पश्चात् बात करूंगा।

आज कल किसी को ऐसी बात कहिये तो वह कहेगा कि घर में बैठो—मुझे आत्मा को नहीं जानना है जिसके लिए २५ वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़े। एक दिन मैं आर्य समाज हनुमान रोड में ठहरा था। एक दिन पूर्व आत्मा के सम्बंध में भाषण भी दिया था। प्रातःकाल के समय द्वार पर एक नवयुवक आकर खड़ा हो गया—कोट पतलून बूट

पहने— द्वार पर खड़ा खड़ा बोला, "स्वामी जी ! नमस्ते । मैंने कहा, "नमस्ते मेरे भाई । कहो मैं तुम्हारी क्या सेवा करूँ ? वह बाला, "रात्रि को आप आत्मा की बात कह रहे थे न, मेरे हृदय पर उसका बहुत प्रभाव हुआ । मैं आत्मा को जानने के लिए आया हूँ । मैंने कहा, "वहाँ द्वार पर खड़े खड़े ही आत्मा का दर्शन करना चाहते हो, "वह बोला, ',जी, मुझे दफ्तर जाना है, समय बहुत थोड़ा है आप शीघ्र बता दीजिए । मैंने कहा, "भोले भाई आत्मा का दर्शन करना आसान नहीं, उसमें बहुत समय लगता है । "वह बोला, "यह आप किसी प्राचीन समय की बात कर रहे हैं, विज्ञान ने इतनी उन्नति करली, संसार इतना आगे बढ़ गया, एक स्विच दबाने से सारे मकान की बत्तियाँ जल जाती हैं । भारतवर्ष के लोग क्या कोई ऐसा उपाय नहीं खोज सके कि झट आत्मा के दर्शन हो जायें । मैंने कहा, योगियों ने बहुत कुछ किया है, परंतु स्विच से बत्तियाँ जलने की जो बात तुम कहते हो उससे पूर्व क्या करना पड़ता है—यह भी जानते हो, स्विच दबाने से बत्तियाँ जलती हैं अवश्य, परन्तु उससे पूर्व एक पावर हाउस तैयार करना पड़ता है । पावर स्टेशन से अपने घर तक तारें लगानी पड़ती हैं । ठीक विधि से उन्हें जोड़ना पड़ता है । फिर वल्ब लगाने पड़ते हैं । पावरस्टेशन से बिजली आये उसके लिए शुल्क देना पड़ता है । सब कुछ होने के पश्चात् स्विच दबाने से बत्तियाँ जलती हैं । तुम भी उस महान् पावर स्टेशन से अपनी तार जोड़ लो, अपने वल्ब ठीक प्रकार से लगा लो उसके पश्चात् जब भी स्विच दबाओगे, तब प्रकाश होगा अवश्य । तारें लगाये विना स्विच को एक बार नहीं सहस्रों बार दबाते रहो, न कमरे की बत्ती प्रकाशित होगी न मन की ।

ऐसे हैं आज के लोग, वे केवल स्विच दबाना चाहते हैं. तारे जोड़ना नहीं चाहते । उनकी इच्छा है कि आत्म दर्शन उन्हें कोई घोल कर पिला दे । परन्तु मैं क्या करूँ यह घोल कर पिलाने की वस्तु नहीं यह तो तप से प्राप्त करने की वस्तु है । बहुत लम्बा तप करना पड़ता है इस के लिये । बहुत यत्न करना पड़ता है ।

इसलिए प्रजापति ने इन्द्र और विरोचन को कहा, "२५ वर्ष तक ब्रह्मचारी बन कर मेरे आश्रम में रहो। रहे वे दोनों । २५ वर्ष के पश्चात् दोनों ने पूछा, "आत्मा क्या है । "प्रजापति बोले, उस तालाब में जाकर देखो। दोनों ने तालाब मे देखा अपना मुख दृष्टिगोचर हुआ। दोनों ने समझा यही आत्मा है। दोनों अपने घरों को वापस चल पड़े।

अपना आप देखने की इस बात से एक चुटकला याद आ गया। पूर्वी अफरीका में कम्पाला नाम का एक सुन्दर नगर है आठ पहाड़ियों पर बना हुआ। एक पहाड़ी पर वहां के आर्य समाज भी बनाया है-दस लाख रूपये लगा कर। बहुत सुन्दर स्थान है वहाँ कम्पाला में कुछ हिन्दुस्तानी हैं, कुछ अंग्रेज, बहुत से हब्शी । विचित्र प्रकार के हैं वे लोग दाढ़ी है न मूंछ। शिर के बाल भी नहीं वहां एक चोटी या दो चोटी बनाने का झगड़ा नहीं करना पड़ता। मैंने उनको देखा तो पूछा "क्या तुमने कभी शीशा नहीं देखा है ? वे बोले हाँ ! देखते हैं ? मैंने पूछा तुम सुन्दर किसको समझते हो। वे बोले जो सबसे काला हो, जिस के होंठ सबसे मोटे हों। मैंने हंसते हुए कहा मेरे सम्बन्ध में तुम्हारा क्या बिचार है। वे बोले तुम अंग्रेजों की अपेक्षा सुन्दर हो, हमारी अपेक्षा नहीं। तो वे लोग भी अपने सौन्दर्य पर मस्त हैं।

विरोचन जब प्रजापति की बात सुनकर आया तो वह भी अपने सौन्दर्य पर मस्त हुआ। उसने अपने साथियों से कहा, यह शरीर ही आत्मा है, इनको खिलाओ पिलाओ स्नान कराओ, सजाओ, यही आत्मा की पूजा है। जितना इसे प्रसन्न करोगे उतना ही आत्मा सन्तुष्ट होगा। सभी राक्षस ऐसा करने लगा। आज भी राक्षस बुद्धि के लोग यही करते हैं। परन्तु इन्द्र या देवता। उसके मन में देव बुद्धि कार्य कर रही थी। घर लौटते हुए उसने सोचा, प्रजापति ने मुझे यह क्या बता दिया, आत्मा तो अजर और अमर है । और यह शरीर बूढ़ा होने वाला, मरने वाला फिर यह आत्मा कैसे हो सकता है । प्रतीत होता है कि समझने या समझाने में कोई त्रुटि हो गई।

ऐसा सोचते ही वह फिर प्रजापति के पास आया, बोला, यह शरीर तो आत्मा नहीं हो सकता यह उत्पन्न होता है, बूढ़ा होता है, मरता, है आत्मा कभी मरता नहीं, फिर आत्मा क्या है ?

प्रजापति ने कहा तुम बुद्धिमान् हो, तुम आत्मा को जानने के अधिकारी हो। विरोचन तो वैसे ही चला गया। तुम्हें बताता हूँ सुनो कि आत्मा क्या है।

परन्तु क्या है आत्मा ? किसी व्यक्ति का लड़का या कोई अन्य सम्बन्धी खो जाये तो वह समाचार पत्रों में विज्ञापन देता है, उसका स्वरूप बताता है। मैं आज आत्मा का स्वरूप बताता हुँ। आप उसे खोजिये। महाराज जनक एक दिन महर्षि याज्ञवल्क्य के पास गये, पूछा महाराज ! मनुष्य ज्योति कहाँ से पाता है ? महर्षि ने कहा यह तो बच्चों जैसा प्रश्न है, मनुष्य को सूर्य से प्रकाश मिलता है। जनक ने पूछा जब सूर्य न हो तब ? याज्ञवल्क्य बोले तब चन्द्रमा से मिलता है। जनक ने पूछा और चन्द्रमा न हो, अमावस की रात्रि हो, तब कहां से मिलता है ? याज्ञवल्क्य ने कहा तब गैस के हण्डों से, बिजली से आग से दीपकों से मिलती है। जनक ने कहा, 'जब इन में से कोई भी चीज न हो, जब घटाटोप अन्धेरा छा गया हो- बन मे खड़ा कोई व्यक्ति कहे कोई है ? मुझे मार्ग बताओ और परे खड़ा कोई दूसरा कहे, जिधर से आवाज आती है उधर आ जाओ। और वह व्यक्ति चल पड़े तब उसे कहाँ से प्रकाश मिलता है ? "याज्ञवल्क्य बोले, तब वाणी से प्रकाश मिलता है ? जनक ने पूछा जब वाणी भी न रहे, जब घोर विशाल वन में, घटा टोप अन्धेरे में मयष्य स्वयं ही आगे बढ़े, तब उसे कहां से प्रकाश मिलता है ? याज्ञवल्क्य बोले तब यह आत्मा से ज्योति पाता है ? "जनक ने पूछा' आत्मा क्या है ! याज्ञवल्क्य बोले राजन ! यह जो हृदय के अन्दर ज्ञानवान रहता है, यह जो इन्द्रियों से ढका हुआ ज्योति वाला है वही आत्मा है।

यह ह आत्मा और यह रहता कहाँ है इस सम्बन्ध में वेदान्त दर्शन

में श्री शंकर कहते हैं ? हृदय की गुहा में दो आत्मा रहते हैं, एक जी-, दूसरा परमात्मा ।

याज्ञवल्क्य ने भी यही बात कही । यह जो हृदय के अन्दर ज्ञानवान रहता है, इन्द्रियों से ढका हुआ ज्योति वाला, वही आत्मा है ?

इससे भी अधिक सुन्दर वर्णन वेद में आया है- उस का अर्थ हैः—

"ऐ संसार के लोगों ! जिसने संसार की बनाया वह तुम्हारे अन्दर रहता है तुम से अलग परन्तु तुम उसे जानते नहीं, क्योंकि (अज्ञान) की धुन्ध में तुम ढ़के हो, केवल व्यर्थ झगड़ते हो, इन्द्रियों के ही पोषक बने हो और केवल मौखिक भजन करते हो ।"

संसार के दीखने वाले पदार्थों को ही शान्ति का साधन समझना-व्यर्थ के तर्क में पड़े रहना और केवल इन्द्रियों को ही तृप्त करने के लिये सारी आयु को नष्ट कर देना आज के और प्राचीन काल के लोगों में इतना ही अन्तर है कि पहले लोग इन्द्र की पूजा करते थे, और आज कल के लोग इन्द्रियों की पूजा में लगे हे । वे इन्द्र भगवान को प्रसन्न करते थे और आज कल के लोग इन्द्रियों को तृप्त करने के लिये अनेक दुःख एकत्रित कर लेत हैं । भजन भी करते हैं परन्तु वह भजन जिह्वा से नीचे नहीं उतरता । ऐसी अवस्था में आत्मा जो तुम्हारे हमारे अन्दर ही बैठा है, उसे देखा नहीं जा सकता, पाया नहीं जा सकता । हाँ वह स्पष्ट दिखाई देगा. कब जब अज्ञान का कोहरा दूर होगा । अब तो समय हो गया शेष कल ।।

ओ३म् शम्

छटा और सातवां दिन

प्यारी माताओ तथा सज्जनों !

कल एक वेद मन्त्र का अर्थ बता रहा था मैं। वेद कहता है: —

"ऐ संसार के लोगों सुनो ! जिस परमात्मा ने सारे संसार को रचा वह तुम्हारे अन्दर है, तुम से पृथक होकर बैठा है, अज्ञान के कोहरे ने उसे छुपा रक्खा है, अविद्या ने तुम्हारी बुद्धि को मलिन कर दिया है, उसे तुम देख नहीं पाते, केवल तर्क के जाल में फंसे रहते हो। तुम केवल प्राणों का पोषण करते हो, केवल बातें बनाते हो, इसी लिये तुम उसे देख नहीं पाते।"

जो लोग प्राणों की ही पालना करते रहते हैं वेद उन्हें असुतृपा कहता है उनकी निन्दा करता है। परंतु प्राणों की पालना तो सभी करते हैं, बड़े से बड़े योगी और महात्मा भी कुछ खाये बिना नहीं रहते। जो रोटी और चावल नहीं खाते वे फल खाते हैं। जो फल भी नहीं खाते वे जल और वायु के आधार पर जीवन निर्वाह करते हैं। पानी और वायु भी तो अन्न हैं, उन के बिना कौन रहता है ? साढ़े दस हजार फुट की ऊंचाई पर गंगोत्री में पांच छः महात्मा ऐसे हैं जो सर्दी गर्मी प्रत्येक ऋतु में वहीं पड़े रहते हैं। उन्हीं में एक बारह मास गंगोत्री में रहने वाले महात्मा हैं। कपड़ा भी नहीं पहनते। बर्फ पड़े या वर्षा हो नंग धड़ंग घूमते हैं। वैसे ही बैठ जाते हैं। तीन चार वर्ष पूर्व जब मैं वहाँ था तो अमेरिका के एक नवयुवक और उनकी पत्नी दोनों वहां आये। मुझ से बोले "हमें गंगोत्री में रहने वाले महात्माओं के दर्शन करा दो, हम अंग्रेजी के अतिरिक्त दूसरी भाषा नहीं जानते।" मैं उन के साथ गया, उस दिन वर्षा हो कर चुकी थी। बर्फ के समान शीतल वायु चल रही थी। अमेरीकन नवयुवक की धर्मपत्नी ने कितने ही गर्म

वस्त्र धारण किए हुए थे-जुर्राबें, मफलर, स्वेटर, दस्ताने; गर्म कोट उस के ऊपर एक और कोट। जब हम स्वामी रामानन्द जी के पास पहुंचे तो वे नियमानुसार गंगा के किनारे नंग धड़ंग बैठे थे। अमेरीकन देवी ने उन्हें देखा तो मुझ से बोली, "इन्हें क्या सर्दी नहीं लगती।" मैं ने स्वामी रामानन्द जी को उन की बात बताई, रामानन्द ने एक बार मुस्कराकर हमारी ओर देखा, फिर शीघ्रता से भस्त्रा प्राणायाम करके अपने अंगूठे से अपने घुटने को दबा दिया, दबाने की देर थी कि सिर से पैर तक पसीना बहने लगा, जैसे वे साढ़े दस हजार फुट की ऊंचाई पर बर्फ वाली गंगा के किनारे बर्फ के समान शीतल वायु में न बैठे हों अपितु किसी अत्यन्त गर्म स्थान पर विराजमान हों, गर्मी के कारण पसीना पसीना हुए जाते हों। मुस्कुरा कर उन्हों ने फिर हमारी ओर देखा, हाथ के संकेत से पूछा "सर्दी कहां है ?" वास्तव में उनके लिए सर्दी और गर्मी का कोई अस्तित्व नहीं। महान् योगी हैं वे, परन्तु अन्न तो वे भी खाते हैं, प्राण की पालना भी करते हैं, फिर वेद ने प्राण को पालने की निंदा क्यों की, इस बात को समझना चाहिए। वास्तविकता यह है कि प्राण को पालना या शरीर को अन्न देना बुरा नहीं। यह शरीर तो भगवान् का मंदिर है, जो लोग इसे जीवित रखने के लिए खाते हैं वेद उन्हें असुतृपा नहीं कहता। वह असुतृपा कहता है उन लोगों को जो जीने के लिये नहीं खाते, खाने के लिए जीते हैं। भोजन का साधारण सा नियम यह है कि इतना खाओ जिससे जीवन बना रहे, कार्य कर सको, यह नही कि कार्य भूल कर बस खाते ही रहो। फारसी का एक शेर है:—

"खुर्दन बराये जीस्तन व जिकर करदन अस्त।
तो दानी कि जीस्तन बराये खुर्दन अस्त।"

अर्थात् भोजन करना चाहिये इस लिए कि जी सको और प्रभु को याद कर सको, परंतु तुम समझ बैठे हो कि जीना केवल खाने के लिए है। और आजकल देखिये क्या यही दशा नहीं। प्रातः उठो तो खाट पर

ही बैड टी (Bed Tea) फिर "अरली टी फिर केवल "टी" तब आफिस में "लञ्च टी" सांयकाल "आफिस टी" रात्रि को "नाइट टी।" प्रातः से सांय तक टी पी, टी पी, टी पी, टी पीओ जी, यही समाप्त नहीं होता। पार्टी भी होती है तो टी पार्टी। कोई यह नहीं सोचता की दूध पार्टी मक्खन पार्टी या घी पार्टी करदे। विचित्र दृश्य हम ने बना रक्खा है। प्रातः से सायं तक एक ही चिंता—क्या खाये, और यह निर्णय हो जाये कि क्या खायें तो फिर यह चिंता कि कहां से लायें।

जीवन का विचित्र नुसखा हमने खोज रक्खा है, पहले खाओ, फिर कमाओ, इतना खाओ कि डाक्टर के पास जाना पड़े, इतना कमाओ कि रोगी हो जाओ फिर मर जाओ।

इस प्रकार तो ईश्वर के दर्शन नहीं होते और उन को भी नहीं होते जो केवल दिखावे के लिये भक्त बनते हैं, केवल जिह्वा से नाम का जाप करते हैं। नाम जपने से मन का मैल अवश्य दूर होता है, परंतु केवल उसी समय जब नाम का साबुन मन के कपड़े तक पहुंचे। आप मन को रक्खें एक ओर और साबुनको दूसरी ओर तो मले फिर यह मैल कभी दूर होगा नहीं।

एक व्यवित था बहुत मैले कपड़े थे उस के, उन्हीं को पहन कर वह घूमता रहता था। एक सज्जन ने उसे देखा तो कहा, "भाई ! तू इतने मैले कपड़े पहने फिरता है, थोड़ा साबुन लेकर इन को धो ही ले। क्यों यह मैल साथ लिये घूमता है, यह तो रोगों का घर है।" उस व्यक्ति ने कहा, "साबुन से क्या होगा ?" सज्जन बोले, "कपड़े साफ हो जायेंगे। मैल दूर हो जायेगा।" उस व्यक्ति ने साबुन की एक टिकिया बाजार से खरीदी। नदी पर गया, अपने कपड़े पानी में भिगोये, उन के ऊपर साबुन की टिकिया रखदी और स्वयं एक ओर बैठा गया। घण्टा बीता, दो घण्टे बीते, तीन घण्टे व्यतीत हो गये। वह प्रतीक्षा करता रहा कि कपड़े स्वच्छ हों तो उन्हें पहन कर घर चलूं। परंतु वहां तो कुछ हुआ

नहीं । अन्ततः सायंकाल उस ने वस्त्र उठाये, क्रोध से जलता हुआ उस
सज्जन के पास पहुंचा जिस ने उसे कपड़े धोने के लिये कहा था।
उस के पास जा कर गालियाँ देता हुआ बोला, "तू तो कहता था कि
साबुन से कपड़े स्वच्छ होते हैं, देख कहां हुए ये तो वैसे के वैसे ही हैं
अब मैं पहनूं क्या ? पहले सूखे थे अब गीले हो गये हैं ? "सज्जन ने
कहा, अरे अभागे ! इस प्रकार भी क्या कपड़े धोये जाते हैं । अरे कपड़े
धोने हों तो साबुन को कपड़े पर रगड़ना पड़ता है, कपड़े को पत्थर पर
पटकना पड़ता है, बारबार ऐसा करने से मैल कट जाता है, और तू
कपड़ों के ऊपर साबुन रख कर बैठा रहा।" जो लोग केवल जिह्वा से
नाम जपते हैं, केवल दिखाने के लिए भक्ति करते हैं, उनकी भी यही
दशा है, उन के मन का मैल कभी कटता नहीं। उन की पुकार हृदय
के अन्दर बैठे प्रभु के पास पहुंचती नहीं।

महाराज जनक और याज्ञवल्क्य की जो कथा मैं आप को सुना रहा
था, उसमें जनक ने पूछा कि अन्दर होने पर भी ईश्वर दिखाई क्यों
नहीं देता तो याज्ञवल्क्य ने कहा 'चार पर्दों के कारण, ये चार पर्दे हैं:--

बहुत भोजन करना, बहुत तर्क करना, ठीक चिन्तन का न होना
और श्रद्धा का न होना—इन चार पर्दों को हटा दीजिये, फिर देखिये
कि ईश्वर दिखाई देता है या नहीं।'

वेदान्त के जिस विशाल वन की बात मैं कहता था वह अब आरम्भ
होता है। ध्यान से सुनें उन बातों को जो अब मैं आप के समक्ष रक्खूंगा
वेदान्त या ब्रह्मविद्या का पहला प्रश्न है, परमात्मा क्या है ? उसका
रूप क्या है ? उस रूप के सम्बन्ध में एक अद्भुत बात है, प्रतिदिन हम
उसको देखते हैं फिर भी जानते नहीं—आप कहेंगे आनन्द स्वामी तू
यह कैसी बात कहता है—प्रतिदिन हम उसको देखते कैसे हैं, देखें तो
जान न लें ? परन्तु देखों मेरे भोले भाइयों। तुम देखते हो प्रतिदिन,
प्रतिदिन वह सम्मुख आता है, पता इस लिये नहीं होता कि तुम उसे
जानते नहीं। जागते समय आत्मा दायें आँखें में रहता है। सोते समय

एक के पश्चात दूसरे हृदय से आगे बढ़ता हुआ उस स्थान पर पहुँच जाता है जिसे हम ब्रह्म लोक कहते हैं। बाहर से ज्ञात होता है कि सोने वाला गहरी नींद में सो गया, भीतर वह ऐसे आनन्द में मग्न हो जाता है जिसका कोई वर्णन नहीं कर सकता। वह आनन्द ब्रह्मलोक में है, उस ईश्वर का एक रूप जिसे हम खोजते फिरते हैं। प्रतिदिन उस ब्रह्मलोक में हम पहुँचते हैं। कुछ लोग कह सकते हैं कि "पहुँचने के पश्चात भी हम जानते क्यों नहीं ? "तो मेरे भाई ! जानने के लिये ज्ञान की आवश्यकता है। पृथिवी के अन्दर कई प्रकार की धातुएं हैं, सोना चाँदी, ताँबा लोहा और इस प्रकार की अन्य धातुएं—किस पृथिवी में कौनसी धातुएं हैं यह मैं जान नहीं सकता परन्तु धातुओं को जानने वाला एक विशेषज्ञ मिट्टी को देखकर ही बता देता है कि पृथिवी के इस खण्ड में अमुक अमुक धातुएं हैं। इस लिये सबसे पूर्व जानना चाहिये यह समझना चाहिए कि ईश्वर क्या है ! उसका रूप क्या है ?

तत्त्व बोध में जगद्गुरू शंकराचार्य ने उस रूप को एक शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए बताया है :—

शिष्य पूछता है, 'तब आत्मा क्या है ?

शंकर उत्तर देते हैं, सच्चिदानन्द स्वरूप।

शिष्य कहता है, 'सत्य क्या है ?

शंकर कहते हैं, जो तीन काल में सदा एक समान रहे उसको सत्य कहते हैं।

शिष्य ने प्रश्न किया, चित्त क्या है ?

शंकर ने उत्तर दिया, जो स्वयं जागता है और सब पदार्थों को जगाता है वही चित्त है।

शिष्य ने पूछा, आनन्द क्या है ?

शंकर ने कहा, जिस में दुःख न हो, दुःख का नाम और चिन्ह भी न हो, केवल सुख ही सुख हो वह आनन्द है।

यह ह ईश्वर का स्वरूप—स्वरूप पता हो तो उसको पहचानना कठिन नहीं, देख लेने पर जानना कठिन नहां।

विवेक चूड़ामणि में जगद्गुरू शंकराचार्य कहते हैं, वह स्वयं कभी उत्पन्न नहीं होता कभी मरता नहीं, जैसे घड़े के नष्ट हा जाने पर घड़े के अन्दर का आकाश नष्ट नहीं होता, इसा प्रकार शरार के नष्ट होने से शरीर में रहने वाले आत्मा का नाश नहीं हाता।

इस से अगले श्लोक में वे कहते ह।

प्रकट न होने वाला परमात्मा जब प्रकट होने वाली प्रकृति में प्रेरणा करता, है तब प्रकृति न रहकर विकृति बन जोती है।

जो भाई समझते हैं कि जगत गुरू शँकराचार्य आत्मा के अतिरिक्त और किसी भी अस्तित्व को नहीं मानते थे, उन्हें इस श्लोक को ध्यान से से पढ़ना चाहिये। आत्मा के अतिरिक्त एक प्रकृति भी है जो आत्मा की शक्ति से विकृति बनती हैं ऐसा जगद्गुरू शँकराचार्य घोषणा पूर्वक कहते हैं ब्रह्म और प्रकृति को एक दूसरे से पृथक करने के पश्चात् वे जीवात्मा को भी ब्रह्म से अलग करते हैं, कहते है, जीवात्मा हृदय के अन्दर बुद्धि मे रहता है मैं हुँ ऐसा अनुभव होता है, जागते समय स्वप्न देखने समय और गाढ़ निद्रा की दशा में सदा एकसा रहता है तब इस का अर्थ क्या हुआ यह कि जगद्गुरू शंकराचार्य ब्रह्म जीव और प्रकृति तीनों को मानते हैं। यदि तीनों को माने तो यह कहना कि एक ब्रह्म ही है उसके अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं, सत्य कैसे हुआ?

परन्तु शंकर का उद्देश्य था उस समय फैली हुई नास्तिकता को समाप्त करना। उन्होंने सोचा, यदि मैं तीन कहूंगा तो लोग चक्कर में पड़ जायेंगे। इस लिये आगे बढ़कर उन्होंने प्रकृति या माया की एक और परिभाषा की, कहा कि, माया ईश्वर की शक्ति है, जब सृष्टि न हो तब प्रकट नहीं होती। सृष्टि के आरम्भ में प्रकट होती है। परन्तु प्रकट हो या न हो वह सदा रहती है, उसी को अविद्या कहते हैं उसी में सत, रज और तमास तीन गुण हैं, उसी से सारा जगत् उत्पन्न होता है।

और भी आगे चलकर उन्होंने ब्रह्म को तीन भागों में विभक्त कर कर दिया पहला भाग वह जो ब्रह्म है, जो माया के बिना है, माया से परे, प्रकृति से ऊपर उसको वे शुद्ध ब्रह्म कहते हैं। दूसरा भाग वह ब्रह्म है जो अहङ्कार में लिपटा पड़ा है। मैं हूं ऐसा सोचता है। उसको वे अन्तःकरण विशिष्ट ब्रह्म अर्थात् जीव कहते हैं। तीसरा भाग वह ब्रह्म है जिसका वर्णन नहीं हो सकता, जिससे यह सारा जगत बना है, उसको उन्होंने माया कहा। अब सोचकर देखिये कि जगद्गुरू शंकराचार्य का शुद्ध ब्रह्म ही महर्षि दयानन्द का परमात्मा है। जगद्गुरूशंकराचार्य का जीव अथवा अन्तःकरण ही महर्षि का आत्मा है और जगद्गुरू की माया ही महर्षि की प्रकृति है। जगद्गुरू शंकराचार्य वास्तव में इन्हीं तीनों वस्तुओं को मानते हैं जिन्हें महर्षि दयानन्द मानते हैं। वेद भी इन तीनों को अनादि मानता है। कहने को शंकर और दयानन्द में अन्तर है अवश्य, परन्तु गहराई में जाकर क्रियात्मिक रूप से देखिये तो ज्ञात होगा कि दोनों में कोई अन्तर नहीं, दोनों एक ही बात कहते हैं।

परन्तु मैं तो जगद्गुरू शंकराचार्य की बात कर रहा था, जिस प्रकार से उन्होंने माया की परिभाषा की उस पर विचार कीजिये। वे कहते हैं कि माया ब्रह्म की शक्ति है। यह भी कहते हैं कि माया जड़ है और यह भी कि माया में दुःख है। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ब्रह्म यदि चेतन है तो उसकी शक्ति जड़ कैसे हो गई है ? ब्रह्म यदि आनन्द से परिपूर्ण है तो उसी का एक भाग दुःख में क्यों डूब गया ? जगद्गुरू उत्तर देते हैं कि, अज्ञान से ऐसा हुआ। परन्तु इसका अर्थ तो यह हुआ कि माया की शक्ति ब्रह्म से बड़ी है, वह चेतन ब्रह्म को जड़ बना देती है। आनन्द से भरपूर ब्रह्म को दुःख के सागर में ध्वस्त कर देती है ? ऐसा मानने से तो यही कहना पड़ेगा कि ब्रह्म की नहीं माया की पूजा होनी चाहिये, जो बड़ा है उसको प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

आजकल हमने यही बात समझ रक्खी है, माया की पूजा को ही धर्म बना रक्खा है। पंच वर्षीय योजनाएं बनती हैं, बाँध बनते हैं,

पुल बाँधते हैं, सड़कें, यन्त्रग्रह सब माया की पूजा के लिये। विश्वास कर लिया हमने कि माया ही सबसे बड़ी है, उससे बड़ा और कुछ नही।

एक व्यक्ति का विवाह हो गया, वह अपने घर में रहने लगा। घर में कुछ छोटे छोटे सफेद चूहे थे। एक दिन एक मोटा चूहा एक छोटे सफेद चूहे को खा गया। उस व्यक्ति ने समझा यह मोटा चूहा ही शक्तिशाली है, इसकी पूजा करनी चाहिए। वह उसे खिलाने पिलाने लगा। परंतु एक दिन उसने देखा कि एक बिल्ली आ गई। चूहा उसको देखते ही बिल में जा घुसा। वह बिल्ली की पूजा करने लगा। एक दिन बिल्ली एक कुत्ते को देखकर भाग गई, उसने समझा कुत्ता ही बड़ा है कुत्ते की पूजा करने लगा। परंतु एक दिन घर में आया तो देखा कि कुत्ता आगे आगे भागा जाता है, उसकी पत्नी हाथ में झाड़ू लिए पीछे भाग रही है। उसने समझा मेरी पत्नी बड़ी है उसकी पूजा करने लगा परंतु यह तो पूजा करने की विधि नही। पूजा करनी है तो उसकी करो जो सबसे बड़ा है। पहले उसे जानो फिर उसका पल्ला पकड़ लो। मैं पंचवर्षीय योजनाओं, पुलों और यंत्र ग्रहों का विरोध नहीं करता, केवल यह कहता हूँ कि इनकी पूजा को धर्म न बना लो। इनकी पूजा करने से सच्ची शान्ति नहीं मिलेगी, सच्चा सुख नहीं मिलेगा। यह सब तो माया है, और माया है जड़, इसकी अपनी कोई शक्ति नहीं। जगद्गुरू शङ्कराचार्य ने उसे ईश्वर की शक्ति कह कर और फिर उसे जड़ और दुःख वाली कह कर स्वयं अपनी ही समझ से अन्याय किया है।

वास्तविकता यह है कि ब्रह्म अलग है, प्रकृति अथवा माया अलग और जीवात्मा दोनों से भिन्न।

मैं ब्रह्म हूँ ऐसा कहने का अधिकार केवल उसको मिलता है जिसने चार प्रकार के साधनों से अपने आप को बड़ा बना लिया है, ब्रह्म का अर्थ ही बड़ा है। परंतु ब्रह्म यदि बड़ा है तो स्पष्ट है कोई उससे छोटा भी होना चाहिए। किसी व्यक्ति का एक ही बेटा हो तो उसे कोई बड़ा

नहीं कहता। यह बेटा बड़ा बनेगा उस समय जब उसका कोई छोटा भाई उत्पन्न हो जाए। तब एक छोटा होगा, दूसरा ब्रह्म। ब्रह्म का अर्थ ही यह है कि उससे छोटा भी कोई है, और वह छोटा है आत्मा या जीव। यदि आत्मा न हो तो ब्रह्म को ब्रह्म कहना ही अशुद्ध हो जायेगा। जो लोग कहते हैं कि यह सब ब्रह्म है, उनसे पूछो कि यदि यह सब ब्रह्म है, तो फिर छोटा कौन है! किसी की अपेक्षा से तुम उसको ब्रह्म कहते हो। यदि इस बात का उत्तर नहीं दे सकते तो फिर वेद की बात मानों। देखो! सदा से तीन वस्तुएँ वर्तमान हैं, एक प्रकृति जो जड़ है, दूसरा आत्मा जो छोटा है, तीसरा परमात्मा जो सबसे बड़ा है, इसलिए ब्रह्म है।

कुछ और लोग माया के संबन्ध में एक और बात कहते हैं। मकड़ी का उदाहरण देकर वे बताते हैं कि जिस प्रकार मकड़ी चेतन होते हुए भी अपने शरीर से जाला निकाल कर अपने चहुं ओर इस जड़ जाले को तन लेती है, इसी प्रकार चेतन ब्रह्म भी जड़ शक्ति को उत्पन्न करके उसे सब ओर फैला देता है। वितण्डावाद के लिए यह बात अच्छी प्रतीत होती है, परन्तु तर्कवादी यह नहीं सोचते कि मकड़ी का एक शरीर है– एक जड़ शरीर, उससे वह जाला निकालती है जाला भी जड़ है। परन्तु ईश्वर का तो कोई शरीर नहीं, उसके अन्दर कुछ भी जड़ नहीं, फिर यह जड़ माया उसके भीतर से उत्पन्न कैसे होगी। वास्तविकता यह है कि प्रकृति कभी उत्पन्न हुई नहीं, सदा से जड़ है सदा से भिन्न।

उपनिषदों का उदाहरण देकर एक और बात भी इस संबंध में कही जाती है। उपनिषद् में एक स्थान पर आया है कि "वहां पहुँच कर वह एक ही देखता, दूसरा कोई नहीं होता। इससे वेदान्ती भाईयों ने यह समझा कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ है नहीं, परन्तु उन्होंने यह नहीं विचारा कि उस 'वहां पहुँच कर' का क्या अर्थ है। "वहाँ पहुँच कर का अर्थ है चार प्रकार के साधनों को अपनाने और उन पर आचरण करनेके पश्चात् समाधि की दशा में पहुँचना। समाधि की अवस्थामें मन नहीं रहता, चित्त नहीं रहता, अंहकार नहीं रहता, कुछ भी नहीं रहता।

इधर एक छोटी ज्योति, सम्मुख एक विशाल ज्योति, और कुछ भी शेष नहीं रहता। उस दशा में कहते हैं, "वह एक ही देखता है दूसरा नहीं होता।

ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में महर्षि दयानन्द ने भी यही बात लिखी है। उसे सुनने से पूर्व यह सुनिए कि परमात्मा के दर्शन किस स्थान पर होते हैं। महर्षि कहते हैं हृदय के भीतर कमल जैसी जो वस्तु है उसमें आत्मा और परमात्मा दोनों रहते हैं। वेद में इसी बात को एक और रीति से वर्णन किया गया है। वेद के एक मन्त्र का अर्थ है:—

"आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली अयोध्या नाम की देवताओं की नगरी है। उसमें एक गुहा के अन्दर सोने के कोश में छुपा हुआ वह परम ज्योतिमान् ब्रह्म रहता है।

आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली नगरी है मनुष्य का यह शरीर। सबसे नीचे है मूलाधार चक्र, इसके पश्चात् स्वधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, अनाहत चक्र, मनस चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र सहस्रार चक्र-इसी प्रकार नौ द्वार हैं नाक के दो छिद्र, दो कान, दो आंखें, मुख और नीचे के दो द्वार। इन सभी द्वारों पर देवता पहरा देते हैं, इनसे आगे शरीर के अन्धकार में हृदय की गुफा है, उसके भीतर प्रकृति के सुनहरी ढकने से घिरा हुआ परम ज्योति स्वरूप परमात्मा रहता है।

इसके भीतर वह प्रवेश करता है, जो अष्टाङ्ग योग के सभी अङ्गों को अनुष्ठान और चार प्रकार के साधनों पर आचरण करता है।

जब महर्षि समाधि का वर्णन करते हैं तो लिखते हैं कि जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि रूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के ज्ञान में प्रकाशमय होके, अपने शरीर को भूले हुए के समान जान के, आत्मा को परमात्मा के प्रकाश स्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण को समाधि कहते हैं······वहाँ तीनों (ईश्वर जीव, प्रकृति) का भेद भाव नहीं रहता।

स्मरण रखिए महा हो जाने का अर्थ परमात्मा बन जाना नहीं है।

लोहे का गोला अग्नि के समान हो जाता है अवश्य,आग नहीं बन जाता उसे आग से निकाल कर पानी में डाल दीजिए, वह फिर लोहे का लोहा बन जाता है, इसी प्रकार आत्मा परमात्मा नहीं बनता, परमात्मा के जैसा हो जाता है । "मैं ब्रह्म हूँ ऐसा कहने का अधिकार केवल समाधि की दशा में प्राप्त होता है उससे पूर्व नहीं । एम० ए० की डिग्री प्राप्त किए बिना जैसे कोई व्यक्ति अपने आपको एम० ए० नहीं कह सकता, कहे तो अपराधी बनता है । उसी प्रकार इस दशा को प्राप्त किये बिना जो लोग अपने को "मैं ब्रह्म हूँ कहते हैं, वे ईश्वर के अपराधी बनते हैं ।

यह है जगद्गुरु शंकराचार्य के अद्वैतवाद और महर्षि दयानंद के त्रैतवाद की वास्तविक फोटो । जगद्गुरु मानते वही हैं, वही महर्षि मानते हैं, और महर्षि वही बात कहते हैं जो जगद्गुरु कहते हैं, केवल उनके कहने का ढंग भिन्न भिन्न है । अपने ढंग को निभाने के लिए जगद्गुरु शंकराचार्य ने गीता, ब्रह्मसूत्र और उपनिषद् तीनों को आधार माना । महर्षि ने इन तीनों को देखा, इन के साथ वेद को भी । जगद्गुरू केवल नास्तिकता के विरुद्ध लड़ना चाहते थे, जो उस समय फैल रहा था । महर्षि नास्तिकता के अतिरिक्त उस विदेशी संस्कृति के आक्रमण का भी उत्तर देना चाहते थे जो देश के स्वाभिमान को दबाये देती थी । इस लिये दोनों ने अलग अलग मार्ग अपनाये, अन्यथा उन में बहुत अन्तर नहीं । महर्षि ने वेद को संसार के समक्ष रक्खा, जगद्गुरू ने केवल वेदान्त को, वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों को ।

वेद का यह अंतिम भाग अथवा वेदान्त वेद से भिन्न नहीं, इस से उल्टा भी नहीं । वेदान्त बताता है कि मैं कौन हूँ ? कहां से आया हूँ ? कहां जाना है ? वेद इस बात को अधिक विस्तार से कहता है । वह सूर्य को वाणी देता है उस से कहलवाता है, मेरे अन्दर जो शक्ति है, वह उसकी शक्ति है, मेरे भीतर जो प्रकाश है, वह उस का प्रकाश है, मेरे पास मेरा कुछ नहीं, यह सब तो ब्रह्म का है । वह नदियों को पानी देता है उन से कहलवाता है, सुनों ऐ संसार के लोगों ! हमारे अन्दर

कोई शक्ति नहीं, शक्ति केवल ईश्वर की है। प्रत्येक वस्तु में ईश्वर को दिखा कर वह कहता है, माया के अन्दर माया वाले को देखो, उसकी शक्ति को देखने के पश्चात् मनुष्य तुरंत पुकार उठता है:—

रोशन हैं मेरे जलवे हर एक शै में लेकिन।
है चश्म कोर तेरी, क्या है कसूर मेरा॥

यह है वेद और वेदान्त का सच्चा स्वरूप। इस के पश्चात् भी जो लोग समझ नहीं सकते, उन से पूछिये कि सारा वेदान्त तो ब्रह्म को प्राप्त करने के साधनो और उपायों से भरा हुआ है। ब्रह्मप्राप्ति का दूसरा नाम ही वेदान्त है और यदि हम सब ब्रह्म हैं तो फिर ब्रह्म को प्राप्त करने के लिये यत्न करने का क्या अर्थ है ? मैं तो मैं हूँ। अपने आप को मैं नहीं खोजता, फिर ब्रह्म को खोजने का क्या अर्थ हुआ ? यही कि मैं ब्रह्म नहीं हूं, उसे खोज लूँ तो भी ब्रह्म कभी नहीं बन सकता। दो सहस्त्र दो सौ वर्ष पूर्व जगद्गुरू शंकराचार्य ने "अहम ब्रह्म" मैं ब्रह्म हूं" ऐसी बात कही थी, तब से आज तक लाखों व्यक्तियों ने यह बात कही, परंतु उन में से एक भी ब्रह्म बन गया हो ऐसा तो ज्ञात नहीं होता।

परंतु श्री शंकर को उस समय की नास्तिकता को पूरा करने के लिये, एक आत्मा है यही सिद्ध करना था, इस लिये वे प्रत्येक प्रकार की युक्ति देते चले गये। यह नहीं देखा उन्ही की युक्ति स्वयं उन का खण्डन करती है।

(पूज्य महात्मा श्री आनंद स्वामी जी सरस्वती ने अपने सातवें दिन के व्याख्यान में जगद्गुरू शंकराचार्य के अद्वैतवाद और महर्षि दयानंद सरस्वती के द्वैतवाद की तुलना करते हुए और दोनों वादों में समता पर तर्क प्रारम्भ रखते हुए कहा:)

प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

ब्रह्म सूत्र के पहले अध्याय के पहले पाठ में लिखा है। अच्युत ग्रंथ माला काशी द्वारा प्रकाशित ब्रह्म सूत्र का भाषार्थ यहाँ दिया जाता है, "उस श्रुति में आनंद है, जीव से भिन्न है ऐसा कहा है और आनंद से परमात्मा ही है, जीव नहीं।" यहां परमात्मा और जीवात्मा दोनों अलग मान लिये गये हैं।

ईश्वर के अतिरिक्त और किसी को आनंद नहीं होता। यह वे मानते हैं, तो स्पष्ट है ईश्वर के अतिरिक्त कुछ और भी है। क्या है वह और ? जीवात्मा है वह। वे ब्रह्म सूत्र को मानते थे, उसे छोड़ नहीं सकते थे, इसी प्रकार के कई और सूत्र भी हैं जिन से स्पष्ट रूप से ज्ञात होता है कि जीवात्मा भिन्न है और परमात्मा भिन्न। सत्य बात तो यह है कि महर्षि व्यास जिन्हों ने ब्रह्म सूत्र को लिखा, ईश्वर और आत्मा दोनों को भिन्न मानते थे जगद्गुरू ने देखा नहीं कि जिस ग्रंथ को वे अपने सिद्धांत का आधार बनाना चाहते हैं वही उस सिद्धांत का विरोध करता है और फिर उपनिषदों का भाष्य करते समय बृहदारण्यक उपनिषद के तीसरे प्रपाठक में पहुंच कर तो वे जैसे विवश हो गये, वहां स्पष्ट लिखा है कि जो जीव आत्मा से अलग है, जिसको जीवात्मा नही जानता, जीवात्मा जिस का शरीर है (बृहदारण्यक ३।७।२२

इतनी स्पष्ट और सरल बात है यह कि श्री शंकर इसे किसी भी प्रकार बदल नही सके। इस लिए उन्हें अपने भाष्य में नीचे टिप्पणी देनी थी, लिखना पड़ा कि यह भेद उपाधि से है, जैसे घड़े के आकाश और महाकाश में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है वास्तव में है नहीं। यह घड़े का आकाश और महा आकाश मैं भी मानता हूं। दोनों एक हैं दोनों में अन्तर नहीं। परन्तु यह कहाँ लिखा है कि घड़े के आकाश में एक और आकाश भी है, जो आकाश को नहीं जानता। सत्य बात यह है कि घड़े के आकाश और महा आकाश की यह सारी बात केवल वितण्डावाद है, इस के अतिरिक्त और कुछ नहीं। और फिर ब्रह्म सूत्र के एक और सूत्र में स्पष्ट लिखा है, "हृदय की गुहा में दो आत्मा

निवास करते हैं, एक परम ज्योतिमान् है दूसरा उसका दर्शन करता है। यदि ये दोनों आत्मा एक ही हैं तो दर्शन कौन करता है। दर्शन करने का सीधा सा अर्थ यह है कि दर्शन करने वाला भिन्न होना चाहिये, दर्शन देने वाला भिन्न। एक प्रेमी होना चाहिए, दूसरा प्रीतम। एक भक्त होना चाहिये दूसरा भगवान। दोनों हों तभी कार्य चलता है, नहीं तो नहीं चलता और दोनों के साथ साथ माया हो, प्रकृति हो, तो यह संसार बनता है नहीं तो नहीं बनता।

ये हैं वेदान्त के विशाल वन की बातें, कुछ बातें आपको शुष्क प्रतीत होंगी परन्तु जगद्गुरूशंकराचार्य के पश्चात् आने वाले लोगों ने वेदान्त को तर्क वाद के जिस मार्ग पर चला दिया, उसकी वर्तमान में ये बातें आवश्यक भी तो हैं। सीधी सी बात यह है कि चार प्रकार के साधनों को पूरा करने और योग के आठ अंगो को पूर्ण करने के पश्चात् आत्मा जब मुक्त हो जाता ह, तब वह अग्नि में पड़े गोले के समान हो जाता है निश्चितरूप से, परन्तु आग कभी नहीं बनता। लोहा फिर भी भिन्न रहता है अग्नि भिन्न। जैसे ही आत्मा मुक्ति की अवस्था से बाहर आता है वैसे ही फिर लोहे का लोहा रह जाता है।

जगद्गुरू शँकर के सिद्धान्त के सम्बन्ध में आज के प्रसिद्ध दर्शनिक डा० राधा कृष्णन् क्या कहते हैं, इसे सुना कर बात समाप्त करूंगा डाक्टर साहब की बात सुनिए वे क्या कहते हैं :—

बादराइन (महर्षि व्यास) के मत में ब्रह्मऔर जीव की भिन्नता निश्चितरूप से है। मुक्त अवस्था में भी जीव की भिन्नता बनी रहती है।

इससे आगे चल कर डा० सर राधा कृष्णन लिखते हैं कि "यह जगत मिथ्या नहीं है न ही इस का ढाँचा स्वप्न के समाज है। यह अपनी विशेषता रखता है। इसका जन्म प्रकृति और लय ब्रह्म पर आश्रित है।

इसके साथ ब्रह्म सूत्रों के सम्बन्ध में डा० थोबो की बात भी सुनिये । डाक्टर थोबो ने वेदान्त दर्शन के शंकर भाष्य का अंग्रेजी में बहुत सुन्दर अनुवाद किया है । वही डा० थोबो लिखते हैं ब्रह्मसूत्रों की शिक्षा के सम्बन्ध में मेरी स्पष्ट सम्मति है कि वे पर और अपर ब्रह्म ज्ञान में कोई भेद नहीं रखते- न ही उन में कहीं पर शँकर के अर्थों में ब्रह्म और ईश्वर भिन्न हैं । वे सूत्र जगत को मिथ्या नहीं मानते, और न ही जीव और ब्रह्म की एकता का प्रति पादन करते हैं । इसी प्रकार डा० दास गुप्ता ने भी शँकर भाष्य के सम्बन्ध में ऐसा ही लिखा है ।

फिर इस बात पर भी विचार कीजिये कि वेदान्त दर्शन में चार अध्यायों में ब्रह्म का स्वरूप कहा है । ब्रह्म जीव और जगत के परस्पर सम्बन्ध में वेद और उपनिषद् के वाक्य दिये हैं । दूसरे अध्याय में यह बताया है कि जगत ब्रह्म पर किस प्रकार आश्रित ह और किस प्रकार इस का विकास हुआ है, तथा किस प्रकार इस का लय होता है । तीसरे अध्याय में ब्रह्म की प्राप्ति के साधनों पर विचार है । यदि सब ब्रह्म ही है तो फिर ब्रह्म की प्राप्ति के साधनों की क्या आवश्यकता तीसरे अध्याय में पुनर्जन्म पर भी प्रकाश डाला है और चौथे अध्याय में ब्रह्म प्राप्ति के फल की ओर संकेत है । मुक्ति के स्वरूप का भी वर्णन है ।

इस में कोई संदेह नहीं कि उपनिषदों में कुछ स्थल एसे आये हैं जहाँ एकता का वर्णन है । ईशोपनिषद् के सातवे मंत्र में "एकत्वमनुपश्यति" लिखा है । परन्तु अद्वैत पद नही लिखा एकत्व में और अद्वैत में बड़ा अंतर है और एकता का वर्णन मनुष्य की विशेष अवस्था से सम्बंध रखता है । जैसा कि अथर्ववेद के में एक मंत्र आया है जिसका अर्थ है ऐ वायु मुझे उन्मत्त कर दो है अन्तरिक्ष तू भी मुझे पागल बना दे । ऐ अग्नि तू भी मुझे प्रेम उन्मत्त बना दे और उसे (परमात्मा को) भी मेरे लिये विकल कर दे ।

बात है भी ठीक प्रेमाग्नि दोनों ओर से जलनी चाहिये । कहा भी है:

उलफत[1] का तब मज़ा[2] है, दोनों हों वेकरार[3] ।
दोनों तरफ़ हो आग बराबर लगी हुई ॥

जब प्रेम पूर्ण हो जाता है तब मैं में मिट जाती है और तू ही तू रह जाता है, तब ऐसे प्रेमी भक्त को संसार के प्रत्येक पदार्थ में इसी के दर्शन होने लगते हैं और वह कह उठता है :—

गुलशन[4] में सबा[5] को जुस्तजु[6] तेरी है ।
बुलबुल की जबां पर गुफ़तगु[7] तेरी है ॥
हररंग में जलवा[8] है तेरी कुदरत का ।
जिस फूल को सूँघता हूं बू तेरी है ॥

सचाई भी यही है । जब वह सर्व व्यापक है तब प्रत्येक पदार्थ में वर्तमान है तब वह लिंग रहित होता हुआ भी चिह्न युक्त बन जाता है, विना घर वाला होता हुआ भी घर वाला बन जाता है ।

हमें हर चीज़ में आई नजर यारब अदा तेरी ।
वे कैसे होंगे जिन लोगों ने तुझे बेनिशां पाया ।

हाँ हाँ हर पत्ते में, प्रत्येक फूल में, प्रत्येक शूल में उसी की माया है उसी का सौन्दर्य ।

तेरी बेमिषल[9] कुदरत का हर एक पत्ते में दफ्तर है ।
तेरा देखा है सिक्काये सब्बत[10] हमने दाने दाने में ॥

---

(१) प्रेम (२) आनन्द (३) अशांत (४) उद्यान (५) वायु (६) खोज (७) वार्तालाप (८) सौंदर्य (९) अद्वितीय (१०) प्रमाण —अनुवादक

सो स्वयं अहङ्कार करने की अपेक्षा उसी प्रीतम का दर्शन प्रत्येक स्थान पर करो। अथर्व वेद में लिखा है—

उसी को बड़ा मानता हूँ जिससे सूर्य उदय और अस्त होता है उसके अतिरिक्त और कोई बड़ा (ब्रह्म) नहीं है।

हां ब्रह्म तो एक ही है। हम जीव सब छोटे हैं और अनेक हैं। छोटे को नम्रता ही धारण करनी चाहिये और बड़े से नित्य शक्ति और भक्ति मांगनी चाहिये। दोनों जगद्गुरुओं के उपदेश की गम्भीरता में एक ही बात है। संसार बिगड़ चुका है। जगद्गुरुओं के अनुयायी मिल कर बिगड़े संसार को सुधारने के लिए कटिबद्ध हो जायेंतो अशांति संसार को भय, लोभ और क्रोध की भड़कती अग्नि से बचने का कुछ समय मिल जायेगा।

ओ३म् शुभम्

तत्त्व ज्ञान

इस पुस्तक में 'हृदय की पुकार' 'प्राणायाम का ध्यान' आदि विषयों को वेदों उपनिषदों तथा अपने अनुभव के आधार पर सरल और रोचक करके समझाने का लेखक ने सफल प्रयत्न किया है। पुस्तक योगाभ्यासियों, विद्वानों, दार्शनिकों सब ही के लिए उपयोगी है।

पुस्तक की छपाई सुन्दर और कागज़ बढ़िया है। जिल्द आकर्षक संशोधित द्वितीय संस्करण। मूल्य ३)

एक ही रास्ता

इस पुस्तक में स्वामीजी की सात दिन की ओंकार की कथा है। प्राणायाम पर भी स्वामी जी ने अच्छी व्याख्या की है। आनन्द गायत्री कथा की तरह यह भी बड़ी रोचक है। मूल्य ||=)

आनन्द गायत्री कथा

गायत्री पर सात दिन की रोचक कथा। एक बार उठाकर समाप्त करनी ही पड़ती है। मूल्य ||)

प्रभु दर्शन

आज के प्रकृति उपास में प्रभुदर्शन जैसी पुस्त नितान्त आवश्यकता है। को पहचान कर, उसके अपने को प्रभावित कि मनुष्य समाज के दुःखों नहीं हो सकता। उस प्रभु पहचाना जाय यह प्रभुद प्रतिपाद्य विषय है। इस जो कुछ कहा जा सकता है शास्त्रों के आधार पर बड़े सरल ढंग से कह दि बहुत ही सुन्दर और पुस्तक है। सजिल्द पु मूल्य २||)

प्रभु भक्ति

यह पुस्तक स्वामी जी ने पूर्वाश्रम में जब वे महात्म हाल चन्द थे, हैदराबाद लिखी थी। पुस्तक बहुत स मोटे अक्षरों में छपी है। पु आठवां संस्करण है इसी की उपयोगिता सिद्ध है। मू

मिलने का पता :—

गोविन्दराम हासानन्द, नई सड़क, देहली।

अथ

जन्मपत्रिका